आस-पास

मरुधर मृदुल

आस-पास

आस-पास

मरुधर मृदुल

राजस्थान पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस (प्रा.) लि.

स्वर्गीय
भवानी प्रसाद मिश्र को
जो आज भी
अपनी रचनाओं में
मेरे लिए
जीवित हैं!
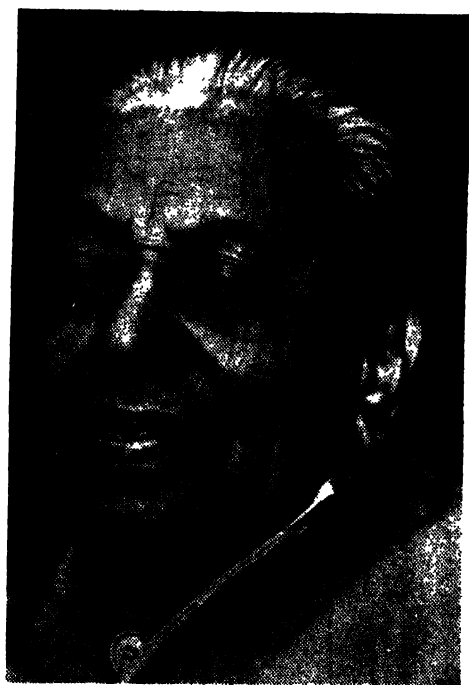
ऊँगता है दिन
जागती है रात
क्या हो गया है
समय को ?

सब कुछ
लगता है भरा-भरा
पूरा का पूरा हरा-हरा
शायद तुम आ गये हो !

अनुक्रम

आरम्भिक

मरुधर मृदुल की कविताओं से गुजरते हुए जिस बात ने मेरा ध्यान सबसे पहले आकृष्ट किया, उसे नाम देना चाहूँ तो बस एक ही नाम दे सकता हूँ—एक सीधा-सा जाना-पहचाना नाम—विविधता। यह विविधता एक गुण है जो सहज ही नहीं मिल जाता है। एक जागरूक कवि कई बरसों की लम्बी साधना और संघर्ष के बाद इसे अर्जित करता है। प्रस्तुत संग्रह के कवि के पास वह भावदृष्टि है जो उसे लम्बे कलात्मक अनुभव के भीतर से प्राप्त हुई और जिसे उसने अपनी 'पीढ़ी की धरती में पड़े बीज' की तरह सींचा और संजोया है। ऐसे ही कवि को यह हक हासिल होता है कि वह अपनी कला को 'अक्षर बीज' का नाम दे सके। कहने की जरूरत नहीं कि 'अक्षर बीज' जैसे स्मृतिगर्भा बिम्ब को जन्म देने की शक्ति उसी रचनाकार में हो सकती है, जो अपनी सांस्कृतिक ऊर्जा के मूल स्रोतों से कहीं गहरे जुड़ा हो। इस संग्रह में ऐसी अनेक कविताएँ मिल जाएँगी जो किसी-न-किसी स्तर पर इस सृजनात्मक जुड़ाव का साक्ष्य प्रस्तुत करती हों।

कुछ कविताओं को पढ़कर मुझे ऐसा लगा जैसे कवि आधुनिक जीवन के सारे शोर-शराबे के बीच एक ऐसी जगह की तलाश कर रहा हो, जहाँ से चुप्पी की दुनिया शुरू होती है और उसी के साथ बेचैन मन की यह उम्मीद भी कि शायद वहीं और सिर्फ वहीं सच की झंकार सुनी जा सकती है। इसीलिए अपनी एक कविता में वह अपने आसन्न संबोध्य से मानो धीमे स्वर में कहता है :

चलो
चुप की ओर चलें
चुप से बातचीत का
एक अलग ही मजा है।

एक अच्छी बात यह है कि कवि ने चुप्पी के भावबोध को किसी फलसफे या रहस्य-दर्शन का जामा नहीं पहनाया। अपनी सहज बनावट में इस संग्रह की अधिकतर कविताएँ अनलंकृत और सीधे अपने लक्ष्य तक पहुँच जाने वाली कविताएँ हैं। कहीं-कहीं एक जोखिम की हद तक जाकर भी वे अपनी सहज ग्राह्यता को बचाए रखती हैं। होता तो यह भी है—और खास तौर से कुछ अपेक्षाकृत लम्बी कविताओं में कि कवि अपने संदेश को अभीष्ट तक पहुँचाने के लिए मानो रचना को अपने भाषिक आवेग में मुक्त मोड़ देता है। वस्तुतः कला का यह तेवर रोमाण्टिकों की स्वतःस्फूर्त्तता से थोड़ी अलग किस्म की चीज है। यह एक बौद्धिक रूप से जागरूक रचनाकार का सहज विवेक से संचालित आवेग है, जिसके पीछे एक दृष्टि है और एक सक्रिय समझ। और 'यह दृष्टि भी ऐसी है जहाँ मन के भीतर अनन्त मन हैं' जैसे प्याज के छिलके के नीचे एक और छिलका :

दृष्टि
मात्र केमरा या फिल्म नहीं
सोच की एक धड़कन है
जिसका अपना तन है अपना मन है
मन के भीतर अनन्त मन हैं।

प्रस्तुत संग्रह की कविताएँ वस्तुतः एक प्रौढ़पन से उपजी कविताएँ हैं—एक बेचैन मन जो जितना विक्षुब्ध है, उतना ही चिरन्तन भी। आज कल कविता में चिन्तन को एक बाह्य वस्तु समझा जाता है। पर मुझे यह देख कर अच्छा लगा कि इस संग्रह का कवि अपनी सोच को अपनी कविता का हिस्सा बनाने से नहीं हिचकता। प्रायः

यह मान लिया जाता है कि तर्क की प्रविधि काव्य प्रक्रिया के अनुकूल नहीं पड़ती। पर जहाँ तर्क के पीछे संवेदना का गहरा ताप होता है, वहाँ कविता जिस तरह बनती है, इसका एक उल्लेखनीय उदाहरण है 'सच' शीर्षक कविता। कविता का आरम्भ एक गहरी प्रश्नात्मकता के साथ हुआ है और एक तरह से यह प्रश्नात्मकता ही इस पूरी कविता की जान है :

सच अगर मैं नहीं
तो सच क्या है ?
क्या मेरा नहीं होना सच है ?
और अगर मेरा नहीं होना सच है
तो यह कैसे हुआ मेरे हुए बिना ?

इस संग्रह की ज्यादातर कविताओं का मूल स्वर यही प्रश्नात्मकता है—यही बुनियादी बोध कि 'यह कैसे हुआ मेरे हुए बिना'। जो हुआ वह सामने है और उस में जिये गये जीवन की अनेक लयें हैं और अनेक रंग। उस में बिज्जी भी है; कोमल भी और इन जाने-माने नामों के साथ पुष्पू, पट्टू और सुदर्शन भी। और सबके साथ वही राग और राग की वही झंकृति जो मृदुल की कविता का अपना खास ठोसपन है। एक सहज अनलंकृत मन से निकली हुईं ये कविताएँ कोई दावा नहीं करतीं। बस हमें आमंत्रित करती हैं कि हम इनके रूबरू बैठें, बतियाएँ और ऐसा करते समय अपने सारे अर्जित साहित्यिक बोध को लबादे की तरह उतारकर एक तरफ रख दें। मुझे विश्वास है, इस संग्रह की कविताओं को वृहत्तर पाठक-समुदाय का वह सहज स्नेह मिलेगा, जिसकी ये हकदार हैं।

केदार नाथ सिंह

मेरे आस-पास ने मुझे किया विभोर
मेरे आस-पास का ओर न छोर

अक्षर-बीज

ये जो वर्णमाला के अक्षर जोड़ कर
मैं लिखता हूँ शब्द
ये मील के पत्थर हैं
उस यात्रा के
जो पता नहीं कहाँ से शुरू हुई थी
और पहुँचेगी कहाँ ?
यहाँ से वहाँ
या वहाँ से यहाँ ?

ये अक्षर
पीढ़ी की धरती में पड़े बीज हैं
मेरे लिए तो यही अक्षर-तीज हैं

हर बार फसल उगती है नई
फिर बनते हैं बीज
फिर पकती है फसल
अपने अंक में समेट कर
नये संदर्भ, नये अर्थ।

१९८९

शब्द : १

मन से सधी
होंठों की प्रत्यंचा पर
अनायास चढ़ कर
छूट गये
शब्द !

वातायन में
वेग से घूम कर
किसी के मन पर
टूट गये
शब्द !

चाहे या अनचाहे
किसी के मन को
बेध गये
तो किसी के मन को
लूट गये
शब्द !

१९८९

शब्द : २

कोई अभियन्ता है
जो लगातार गढ़ता रहता है।
कोई नियन्ता है
जो मन चाहा हम पर मढ़ता रहता है
कोई अंधेरा है
प्रकाश का रूप धर कर
आकाश से उतर कर
सब कहीं चढ़ता रहता है।
अपनी मरजी के मुताबिक
हर चीज को पढ़ता रहता है।
हम अपनी मरजी से गढ़ें
जैसे भी चाहें बढ़ें
जो अच्छा लगे पढ़ें
क्या हो सकेगा यह सम्भव
उसके रहते ?
कहीं दूर से आता है
आकाश की राह
उसकी हर कहीं चाह
दूर होते हुए भी
तुरन्त आ जाता है
मन पर पूरा का पूरा छा जाता है।
मेरी और सब की
स्वायत्ता पर करता है हमला
वह और उसका अमला।
और फिर उसके तेवर से
होता है अभ्यस्त।
मुग्ध सम्मोहित
सब कुछ सब का

हो जाता है उसी में व्यस्त।
अपना जो भी होता है
होता है अस्त
यह नाभकीय शक्ति
मारक है नाभकीय शस्त्रों से कहीं ज्यादा
इस से अधिक शक्तिमान
कुछ भी नहीं।
शब्द को इस से अनवरत
जूझना पड़ेगा
शब्द को सब का दुख दर्द बूझना पड़ेगा।
शब्द को
दर्शन करना पड़ेगा
अपने विशाल का
अपनी शक्ति को
समझना पड़ेगा
इस नये संघातक आक्रमण से
आखिर शब्द ही तो लड़ेगा।

१९९४

शब्द-गरिमा

कागज का एक पृष्ठ
निहित है जिस में
एक भरा-पूरा वृक्ष

पर कहाँ उस में
हरियाली कहाँ सुगंध
कहाँ पंछियों के घोंसले
कहाँ सुखद छाया
कैसी अनूठी है
इन की माया।

पर कागज में ढल कर
वे समूचे नष्ट हो गये
कालिख से पुत कर
सर्व भ्रष्ट हो गये।

शब्द-पत्ती फूल-अक्षर
इन्हें बरतने के लिए
स्वयं को बनना पड़ता है
छंद-मर्मर
और मिमझर

सावधान!
ये महर्षि पेड़
न हो जाएँ व्यर्थ
ये शब्द सु-मन
यों ही झड़ गये
तो हो जाएगा अनर्थ।

१९८९

कविता : १

जलते हुए
दीपक के उनमान है
कविता।

पर
अकेले दीपक
या
बाती से नहीं
मन के स्फुलिंग से
जलती है
कविता!

१९८८

वृक्ष

एक वृक्ष है मेरी कविता !

पत्तों के अक्षर
और
टहनियों के शब्दों को
अनुभव से संचारित करती
नस-नस में प्रवाह भरती।

आकाश, उजास और धरती
इन सब के भीतर
और
सम्पूर्ण बाहर से
प्रत्यक्ष को संपृक्त करती
सदैव लहलहाती रहेगी
रोज मेरी और सब की
बात गहेगी
लू अंधड़ और तुषार
जम कर सहेगी।

१९८७

मेरी कलम

आकाश
एक खुले खाली
पृष्ठ की तरह खुल जाय
रचने की बात
मन में रच बस कर
घुल जाय।
उठालूँ कलम
और लिखूँ।
हर कण में मैं ही मैं दिखूँ।
और मुझ में हर दिन दिखे
मेरी कलम हर मन की बात लिखे।

१९९३

अ-क्षर

~

मै एक अक्षर
तुम्हारी अदीठ कलम से
जो लिखा गया
अपने आप में अधूरा
चाहे आकार से या प्रकार से।

यदि बिना मतलब गलती से
कुछ लिखते-लिखते
लिख दिया गया हो
तो जहाँ हूँ रहने देना
भले ही काट कर
तुम्हारे द्वारा लिखे जाने का
एहसास भी अप्रतिम है।

मैं एक अक्षर हूं
तुम्हारी अदीठ कलम से
जो लिखा गया
अगर यह लिखा गया है
मन से
तो इसका आ-कार
भले ही कुछ न कहे
यह कहेगा बहुत
वह जो सब दिखता है
और वह जो नहीं दिखता।
मन को खोलेगा
दिशा-दिशा में बोलेगा
स्वयं तुलेगा
और तुम्हें भी तोलेगा

फिर यह
मात्र वही नहीं होगा
जो अंकित है
वह स्वयं पालेगा
अपना स्वरूप
अपना व्यक्तित्व
तुम से कर सकता है प्रश्न
और माँगने लगेगा उत्तर
प्रत्युत्तर।

प्रश्न-उत्तर की
इस बहस में
निकलेंगे नये-नये अर्थ
जो न तुमने सोचे थे
और जो न मैं था
तुम्हारी 'मैं' व
मेरी 'मैं' से अलग
उसका अपना 'मैं'
उभर आएगा
पता नहीं किधर जाएगा
क्या सुनेगा
क्या सुनायेगा
इसकी स्वायत्तता
हाँ अलबत्ता
चौंका दे
शायद तुम्हें और मुझे
इन्हें लिख देने तक
ये तुम्हारे हैं
कागज पर
आकर
यह 'मैं' हूँ
पर उसके बाद
ये तुम्हें और मुझे

कुछ और ही स्वरूप देंगे
वैसे मैं एक अक्षर
तुम्हारी अदीठ कलम से
जो लिखा गया
वह तुम्हें और मुझे
क्या-क्या दिखा गया ?

१९८०

पहली और अंतिम कविता

मेरी पहली और अंतिम
कविता
अगर कोई थी या होगी
तो तुम ही।

कौन कहता है कि
तुम उस समय नहीं थी
जब मैंने पहली बार
गीत में बात कही थी।

तुम उस समय भी वहीं थी
एक आकांक्षा व चाह की तरह
जो न पा सकने पर निकले
उस आह की तरह।

जब तुम न मिल कर भी
दूर से मिली थी
तुम्हारे ही प्यार की कली थी
जो मन में खिली थी।
और जब तुम मिल ही गई
तब की तो बात ही और
तुम से ही आप्लावित
मेरे जीवन का पोर-पोर
और यह मिलन की सुवास
अपना होने का एहसास
एक ऐसा विश्वास
जो फैलता है
दिग्-दिगन्त में

आदि और अन्त में।

इसलिए कहता हूँ
मेरी पहली और अन्तिम
कविता
अगर कोई थी या होगी
तो तुम ही
और सुनो
मैं तुम्हारे ही प्रवाह में
निरन्तर बहता हूँ
इसीलिए कहता हूँ
मेरी पहली और अन्तिम
कविता
अगर कोई थी या होगी
तो तुम ही।

१९८०

कविता : २

बरसों बरस हो गए
कभी तृप्त
कभी तरस हो गए।
कभी उदास
कभी हरस हो गए।
तुम्हें कभी पाया
कभी दूर हुआ
कभी पास आया।
कभी रूठी
तो मनाया।
कभी धरती को परसती
कभी आकाश में सरसती
कभी बन जाती गगन
कभी क्षितिज
कभी मेघ
कभी पवन।
कभी फूल
कभी पेड़
कभी खेत
कभी मेड़
कभी बरखा के बिना
धरती में पड़ी तेड़।
कभी बाज
कभी चिरैया
कभी ताल
कभी तलैया
कभी चाँद सूरज की
लेती बलैया

कभी छाँव
कभी धूप कड़क
कभी सड़क
कभी सड़क पर दौड़ते पैर
कभी थकी-थकी
कभी सैर
कभी अपनी
कभी गैर
कभी गीत
कभी पुस्तक
कभी चुप
कभी मन पर
बजती दस्तक।
कभी अनायास
नींद में
उठ बैठी।
कभी पास से
इतरा कर निकल गई
कभी गहरी
मन में पैठी।
यहाँ
वहाँ
जहाँ- तहाँ
कभी ऊपर सतह में
तो कभी गहरी तह में।
कभी खुल कर
कभी सहमे-सहमे
कभी तेज
कभी गहमे-गहमे।
कभी चुपचाप
धीरे-धीरे उठती
आहट

कभी
जोर की बुलाहट।
कभी रेत का
सागर
कभी
वंशीवट।
कभी इत्मीनान
कभी झुँझलाहट।
कभी दोस्ती
कभी खटपट।
कभी बाहर धकेलती द्वार
कभी पास बुलाती चौखट।
कभी कुछ सुना
कुछ बुना
कुछ चुना
कुछ गुना
और बात बन गई
कभी कुछ भी नहीं हो सका
तुम्हारे मेरे बीच
तन गई।
कभी कह न पाकर
क्षार-क्षार हुआ
खिंचा, खूब खिंचा
और टूट कर
तार-तार हुआ।
कभी हुलराया मन को
तो कभी मन पर वार हुआ।
कभी विजय
कभी हार हुआ।
कभी विरह
कभी अभिसार हुआ
कभी शाश्वत
कभी प्रचार हुआ।

कभी तुम से
होकर अपने से हुआ रूबरू
और कभी तुम्हारे जरिए
सारी दुनिया से सरोकार हुआ।
कभी तुम रीझी
कभी नाराज हुई
कभी साफ कहा
कभी गहरा राज हुई।
कभी अकसर
मुझ से कतराए अक्षर
मैं हार कर लाचार हुआ।
कभी मैंने छुआ
अभी कुछ
अभी कुछ हुआ
और इस तरह से
सभी कुछ।
कभी अनहद आनन्द में पगा
कभी रह गया ठगा का ठगा
कभी सच मिल गया
ऐसा लगा।
कभी तुम-सी
जाह्नवी में नहाया
छोड़ दिया
अपने आप को खुला
जी भर बहाया।
कभी किनारे
पर ठिठक कर
रह गया प्यासा
कभी ज्यादा
कभी जरा-सा
एक अंजुरी तक
हो गई दुराशा
फिर तुम्हें पाने को

अपने आपको
और सभी कुछ को तराशा।
कभी यथार्थ
के बीच गया
यथार्थ मुझे सींच गया
एक न मिटने वाली लकीर
मन के फलक पर खींच गया।
कभी देखने लगा सपने
ढूँढ़ने लगा तुम में
पराये और अपने।
तुम में सभी कुछ
समाहित
तुम एक
अखूट
अजस्र
वृष्टि हो।
सभी कुछ
देखने वाली
समग्र दिव्य दृष्टि हो—
गोया
पूरी की पूरी
सृष्टि हो।
तुम्हें कोई गर
सचमुच ही पा जाय
तो उस में
सिमिट कर
सारी की सारी
कुद्‌रत
ही
समा
जाय।

००० १९९४

शाश्वत बनाम यथार्थ

यह गंदगी
यूँ ही थी
यूँ ही रहेगी
उसे बस
एक तरफ कर दो
उस पर एक सुन्दर परिधान धर दो।

करो बात
शाश्वत की
चौंकाने वाले
सुहाने
मुहावरों को रचो
इस से आँख चुरालो, बचो।
इसे यहीं रख कर
इन्द्र-धनुष तानो
इसका क्या है
इसे न कुछ मानो।

यथार्थ और शाश्वत
दोनों अलग हैं
हम तो कालजयी हैं
यथार्थ से
क्यों हों मुखातिब ?
वह घिनौना है
लिजलिजा है
इसे यों ही रहने दो
इसकी बात उन्हें कहने दो।

जिनके पास
न अदा है
न अदाकारी है
जिन्हें शाश्वत नहीं
यथार्थ भारी है।

हम तो अपने आपको
शिल्प से छलेंगे
शब्दों के सम्मोहन में बहेंगे।
रहने दो यथार्थ को
यों ही रहने दो
वो तो सदैव ऐसा ही था
ऐसा ही रहेगा
हमें तो रचना है
शब्दों का चक्रव्यूह
अंत-पंत
उसी में बसना है!

१९९०

एक बार फिर : १

नक्षत्र टिमटिमाएँ
चाँद जगमगाए
धुआँ नहीं
गगन लगे गगन
एक बार फिर।

दिशा-दिशा विभोर
ओर हो न छोर।
अगन नहीं
पवन लगे पवन
एक बार फिर।

श्वास मुक्त-मुक्त
सुगन्ध युक्त-युक्त
घुटन नहीं
सुमन लगे सुमन
एक बार फिर।

मुक्त हो बहार
नाश क्षार-क्षार
विजन नहीं
सृजन लगे सृजन
एक बार फिर।

जन स्वतंत्र हो
मन स्वतंत्र हो
जशन नहीं
वतन लगे वतन
एक बार फिर।

देह भर नहीं
नेह हर कहीं
बदन नहीं
सजन लगे सजन
एक बार फिर।

नक्षत्र टिमटिमाएँ
चाँद जगमगाए
धुआँ नहीं
गगन लगे गगन
एक बार फिर।

◇◇◇ १९९४

गुन-गुन

गुन गुन गुन
रचता है मन
क्षण क्षण क्षण
यह वह धुन।

सोते जगते
रुकते भगते
बनते हैं सपन
यह वह चुन।

कितने कितने
बनते इतने
मीठे बंधन
यह वह बुन।

बनते मिटते
नाते रिश्ते
आनन-फानन
यह वह सुन।

हँसते रोते
पाते खोते
हर पल, हर दिन
यह वह तुन।

मिटता बसता
महँगा सस्ता
बनता जीवन
यह वह गुन।

फूले जब ये
गुपचुप आये
साथी बन बन
यह वह उन।

जब पेड़ कटा
तब सब उजड़ा
नन्दन कानन
यह वह बन।

तब टूटेगा
जब लूटेगा
हर घर आंगन
यह वह पाहुन।

○○○ १९९२

गाना

क्या
मुझे वही गाना चाहिए
जिसे सुनना चाहते हैं सब ?
क्या
मुझे वहीं आना चाहिए
जिसे बुलाना चाहते हैं सब ?
जो आता है जब तब ?
या फिर मुझे
वह गाना चाहिए
जो सच हो जाय
और सब को
जँच भी जाय।
जिसमें
जन-जनन का मन
बस भी जाय !

१९९३

सवाल मुस्तकिल का

लाख चाहने पर भी
सब कतरा कर निकल गये हैं
पास से साँस रोक कर।
सब कुछ
निगल गये हैं
विश्वास को टोक कर।

प्रतिज्ञा
जो सब ने मिल कर की थी
सौगन्ध जो सभी ने मिल कर
एक स्वर में ली थी।
क्या इस तरह टूटेंगी ?
हमारे देखते-देखते
हमारे हाथ से छूटेंगी ?
ऐसा हुआ तो
फिर होने को रहेगा क्या ?
हमारा मुस्तकिल
हम से कहेगा क्या ?

१९९३

अपेक्षा !

जरा देखो उधर
हवा के
हाथ में हाथ डाल कर
धूप को या अँधेरे को
गोद में लेकर
अपने में ढाल कर
सरवर का पानी तक
अकेला नहीं रहता
और तुम करते हो
अपेक्षा
निसंग अकेले रहने की
मन से !

००० १९९२

चाह

मुझे पता है
माँगने वाले बहुत हैं
और लूटने वाले
इस से भी ज्यादा।
इसलिए
मिल जाय
धूप का एक छोटा-सा टुकड़ा
हवा का एक हलका-सा झोंका
अंजुरी भर साफ सुथरा पानी
जुगनू की एक झलक
गुलाब की सौरभ।
मेरी माँग छोटी-सी है
यानी
जैसे एक प्यारी-सी कहानी
जिसे सुनाती आई है नानी।

१९९४

जलेगा भीतर

एक ज्वालामुखी-सा
फट गया है
मन में।
ये जो भड़की है आग
वह या तो आये बाहर
नहीं तो जलेगा
सभी कुछ
भीतर ही भीतर
मेरे
तन में।

१९९४

जीने का भ्रम

जब जिन्दगी हो
फकत
जी लेना जस-तस
ले लेना
सभी से
सभी का
सभी कुछ
बरबस।
जब होता नहीं
कुछ भी
किसी के किए
जब होता वही
जो हो अपने लिए।
अपने से अलग
कुछ
बचा ही नहीं है
अपने से अलग
कुछ रचा नहीं है
किसी को कोई
जँचा ही नहीं है।
खुद के होने से बढ़ कर
सचाई नहीं है।
आदमी की आदमीयत
घाटे नफे की बही है
सही है तो
इसी में
सभी कुछ सही है।

दुनिया रही बस
तब करे तो करे क्यों
कोई बहस ?

○○○ १९९३

सम्भावना

पढ़ना
एक बरसात की तरह है।
जो अगर घनीभूत होकर
जम कर बरसे
पहुँचे तह में
गहमे गहमे।

मन में अगर कोई
बीज है
कोई खीज है
कोई सीझ है
तो फसल
उग आएगी।

परती जमीन भी
कुछ-कुछ सँवर
जाएगी।

१९९३

भगोड़ा गाँव

कहाँ का हूँ मैं ?

न तो मैंने देखी है नदी
न देखी गाँव की तलैया
न गोरी के गोरे पाँव को चूमता पनघट।

न अपनी अलग भंगिमा लिए
खेजड़ी या नीम या पीपल के पेड़।
न गाँव की चौपाल
न गाँव की फसल
न खेत, न मेढ़।

न खुला निश्छल आकाश
तुलसी का बिरवा भी नहीं
एक दूसरे की ईर्ष्या भी नहीं।

न दूसरे का अपना ढोता सुख
न बिसुरता दुख।

शहर जो शहर नहीं
बिगड़ा हुआ भगोड़ा गाँव है
जहाँ घर कम
अधिक तो ठौंव हैं।
गाँव की कुढ़न नहीं
छीना-झपट है।

अपनापन नहीं
अन्धे कुएँ का रहट है।

दादा-दादी, नाना-नानी हैं भी तो
अस्त-व्यस्त।
दूर से कोई सुनाता है कहानी
केवल मात्र ललचाने के लिए
मुझे देने के लिए नहीं
मुझ से पाने ही पाने के लिए
जोर जबरदस्ती फकत अधीनता है
मेरा जो अपना है उसे छीनता है।
मुझ में बो देता है
निखालिस परायापन।
और फिर मुझे काटता है
बना देता है बौना
अपने वंश का मृगछौना।
आधा तीतर आधा बटेर
न गाय, न शेर
न आम, न बेर
मैं मैं नहीं रहता
वह हो जाता हूँ
और वह
जो चाहता है
उसी साँचे में ढल जाता हूँ।

००० १९९४

छिलती जिन्दगी

यह सही है
कि
काम न करने पर
बेगार न भरने पर
अब पीठ पर कोड़े नहीं पड़ते
कमर नहीं छिलती
पर अब या तो नहीं मिलती
मिलती भी है
तो छिन जाती है रोजी
या छिनती है
जमीन
या फिर मिलती ही नहीं।
जमीन व रोजी
अगर सीता है
तो उसे हर ले गया
स्वर्ण की लंका का रावण
भागना पड़ता है
लक्ष्मण रेखा को छोड़
शहर में
लगभग कहर में
और यों बनती है
झोपड़-पट्टी।
छीना-झपटी।
आज यहाँ
कल वहाँ

जाने कहाँ-कहाँ ?

द्रोपदी को निर्वसना
करना चाहा गया था
पर केवल एक बार।
इस झोपड़ पट्टी में क्या वसन
क्या निर्वसन ?
यह तो सिलसिला है लगातार।
कभी पूरे के पूरे
डोलते हैं निर्वसन
राधा और कृष्ण
या फिर
अधनंगे
डोलते हैं
बाल-गोपाल
जर्जर टपकती चाल।
कभी-कभी
मरणासन्न
ढूँढ़ते हैं अन्न
कूड़े के ढेर में।

यह सब होता है
भले ही कोड़े से नहीं
छिलती हो देह।
सारी जिन्दगी
जाती है छिल
और यह सिलसिला
चलता रहता है
मुसलसिल।

००० १९९३

आकांक्षा

एक वास्तुकार
बदल देता है
घर के कंगूरे, गोखडे
दरवाजे
दिशा।
और कहता है
बदल जाएगा भाग्य
चौतरफा सौभाग्य।

और हम
उन्हीं दरवाजों से
गुजर कर
आह भर कर
कहते हैं
कठिन समय आ गया है
अजान का कुहरा छा गया है।
और सभी कुछ सहते रहते है
जो दरवाजों के
बाहर हैं
जिन में हम शामिल हैं
तरसते रहते हैं भीतर के लिए
दरअसल
बदलने तो हमें चाहिए
कंगूरे, गोखड़े, दरवाजे
और दिशा

और इस तरह विश्वास।
ताकि
सचमुच
रोशनी, हवा
और दिशा
इन में आ जाय
और बदन का पोर पोर
उस ताजगी में
नहा जाय।

○○○ १९९४

आकलन

अजीब-सी धुन
घिर आई है मन मे।
मैं करना चाहता हूँ अपना नाप तोल
ऑकडे जुटाना चाहता हूँ अपने बारे मे।
उम्र का कुछ-कुछ पता है
सो जानने मे रखा क्या है
कितना मन खाया
कितना मन पाया
कितना मन पहना
कितना कुछ सीया
कितना कुछ सुना
कितना कुछ गाया
कितना कुछ गहना
कितना कुछ सहना
कितना कुछ लिया
कितना कुछ दिया
लग सकता है हिसाब।
यह सब
पर व्यर्थ
क्या अर्थ ?
कितने मेरे साथ जन्मे
और कितने मरे
इसका हिसाब
कोई करे तो क्या करे ?
इस सब का

कमोबेश
हो सकता है आकलन।
पर आकलन क्या होगा भूख का
सब ओर धड़ल्ले से चल रही बन्दूक का।
जंगल जो कट गये हैं
इन से कहीं ज्यादा
जो हम टूट गये हैं
बँट गये हैं
रोटी-पानी भर के लिए
खट गये हैं?

◇◇◇ १९९३

तलाश

जहाँ मनुष्य धन धर्म का
न क्रीत दास हो।

समता भरे
भविष्य की फिर से तलाश हो।

०००१९९३

विवशता

मुझे पुन: देखने पड़ेंगे सपने
क्योंकि
यदि ऐसा नहीं किया
तो ठहर जाएगा समय।

अभी जो व्याप्त है
वर्तमान के रुकने
और विगत के लौटने का भय
यहीं रुक जाएगी वय।

महज अखबार
या कलैण्डर में
बदलती तारीख
नहीं है तवारीख।
वह तो कागज
बनता है रद्दी
बाजार में फिर से बिकने के लिए
या फिर सिकने के लिए।

भविष्य समझ में न आए
ऐसा 'तमस' नहीं रहेगा
वह तो किरण का दरिया है
हमेशा हमेशा बहेगा
यह बात सपने के सिवा
और कौन मुझे कहेगा ?

१९९३

सोचना

मैंने सोचा है
और कई-कई बार
सोचता रहा हूँ लगातार।
सच में सोचना मेरी मजबूरी है
एक तरह से बीमारी संक्रामक।
और इसी कारण
कई बार मैं हुआ हूँ रुबरू
अपने आप से
और से भी।
हुआ हूँ आक्रामक
अपने आप से
सब से
जब से अपने होने का एहसास हुआ है
तब से।
या शायद यही है पहिचान
अपने होने की
कुछ पाने की
कुछ खोने की।
भले ही इस ने किया हो
कितना ही आहत
लगभग क्षत-विक्षत।
तुम्हारी नजर में
मेरा सोचना
ऐसा है जैसे
अपने आपको नोचना।

सूरज के ठीक नीचे खड़े हो कर
कोई करे तो कैसे करे अलग
अपनी छाया से
अपने को
नींद से सपने को
जीने से खपने को।
नहीं
मेरे मन में कोई भेद नहीं है
मुझे अपने विवेक पर
तनिक भी खेद नहीं है।
मेरी सोच में मुझे
वह दिखा है
जिस ने किया है
मुझे आलोकित
स्पन्दित
सम्पृक्त
एक ऊर्जा भरे जीवन से।
उसी जीवन को
मैंने विविध रंगों से
भरा है
अपने ही ढंग से
उकेरा है।

१९९४

उजड़े घर

हथोड़े की मार
और फिर गैंती से छिलता पहाड
पहाड़ का फटता सीना
दहाड़ दहाड़।

खण्डे, छबणे, छीण
छैनी से छिलते
पत्थर पर पत्थर
फिर बनते घर
हजारी उम्र वाले।

उधर हजारी बेचारा
पैंतीस की उम्र पर
'सिलोकोसिस' का मारा
छोड़ जाता पीछे
तीस पतझड़ की 'मैना' को
गोद में लिए
'आचुकी' और 'चैना' को
अनब्याही बहिना को
गोया एक उजड़े घर को
भटकने दर-दर को।

००० १९९३

भूख और कानून

छूटती रोजी
यानी छिनती रोटी
मुझे रोज घेरे रहती है
टुकरती आँखों से
मुझे
जिन्दगी की कहानी कहती है।

भूख
जिसने बनाया है मेरा घर
पटकती रहती है अपना सर
कानून की देहरी पर।
और इंसान का बनाया
इंसान के लिए बना कानून
नापता रहता है
कानून की स्केल से
इंसान की भूख
ढूंढ़ता रहता है
भूख से हुई भूल-चूक।

टालता है भूख को
क्योंकि किसी ने कर दिया लागू
भूख को सुनना
मुल्तवी कर
लम्बी कतार में किया खड़ा
जहाँ खड़ा रहता है

हर छोटा बड़ा
बाद में होगी अन्वीक्षा
जैसे भूख के बहाने
हो प्रीतम की प्रतीक्षा।
और कानून के
कहाँ होता है दिल ?
कानून बन्द किए रहता है
नजर को
देखता नहीं उस आतंक के
कहर को
जो बाँटता है भूख
चालाकी से छुप कर
अपनी आवाज को
धीमी और चुप कर।

रोटी तो बेचता है
आंतक
वह भी सड़ी-गली, पुरानी
उसका कुछ नही होता
कुछ रोज टलने के बाद
कहर भूख पर गिरती है
जो फिर निर्द्वन्द्व फिरती है।

कानून दिखाता है आँख
आंतक को कम
भूख को ज्यादा
जो सामने है खडी
बेबस हाथ पसार कर
इसलिए कि
कानून की 'स्केल' पर वह

छोटी है या बड़ी
भले हो कितनी ही कड़ी।
आतंक को न तो जरूरत है कानून की
न कानून का उस पर कुछ भी अंकुश।
कानून का दबदबा है
तो फकत
लाचार भूख पर
जो माँगती दो टूक भर।
अगर यही चलता रहा सिलसिला
छोड़ कर शिकवा गिला
अन्त में ही सही
उठेगी भूख।
कभी न कभी।
थमेगी बन्दूक।
सब कुछ करेगी
अस्त-व्यस्त
ध्वस्त
और फिर विस्मित होकर
अपने आप को टूटता
देखता रहेगा कानून
पेट की ज्वाला का
उठता हुआ जुनून।

○○○ १९९३

सिक्का

आँख है
पर खुलती ही नहीं
पांख है
पर उड़ती ही नहीं

साख है
पर चलती ही नहीं।
कुछ ऐसा हुआ है इन दिनों
इन सब पर
खुलता, उड़ता, चलता है
खोटा सिक्का
आदमी आदमी में
फर्क बस इतना
बिना समझे
हिचकिचाता चलता है आदमी

धड़ल्ले से
चलता है
खोटा सिक्का।

१९९३

सन्दर्भ मनुष्य के

वैसे भी घुप अंधेरा है
तिस पर
हो गई है
हर ट्यूबलाइट फ्यूज
वैसे भी
गंदगी के ढेर के ढेर
अबेर हो या देर
उठते ही नहीं।
उठती है तो गंध ही गंध
तार तार हुए कपड़े
की तरह
राजपथ के अलावा
फटी हुई है सड़क
टैम्पों व बसों
के उठते हुए धुएँ
हुक्के व बीड़ियाँ कड़क
आकाश की कसैली केतली में
ओजोन की सुरंग
की सिगड़ी पर
लगातार उबलती
चाय
छलकती रहती है
और एक सुन्दर पर बिकी
देहयष्टि
उछल कर कहती है

आह वाह।
कपड़े नही
आदमी धुल रहा है
वाशिंग मशीन में।
यह क्या
घट गया है?
हर कुछ
मनुष्य के संदर्भ से कट गया है। ○○○ १९९३

भूगोल का इतिहास

विश्व क्या
पूरी की पूरी सृष्टि
अब हो रही है
एकमएक।
भले ही
देशों की
लक्ष्मण रेखाएं
यों कि यों खिंची हों
और यों फिर यों ही हों
भूगोल और इतिहास।
भले ही
पहले जैसे बँटें हो मन
कटें हों तन
लुटते हों घर-बार
और
तिलतिल कर
कट रहा हो जीवन।
सृष्टि के एकमएक होने का अर्थ
किसी एक मुट्ठी में
समाना
सारी सृष्टि का
मुट्ठीभर हो जाना।

१९९४

विचित्र सिलाई !

सूर्य की सुई में
दिन
पिरोये हुए धागे से
सीता रहता है
फटे हुए उजाले।
यानी रात को
मिटाकर
जोड़ता
साँझ से
प्रभात को !

१९९४

नेति-नेति

अन्तिम बात
न तो आज तक कही गई
न कही जाएगी।
अन्तिम कुछ भी
नहीं है
न झूठ
न सत्य
न जो किया गया
न तथ्य।
अंतिम
अनवरत है
लगातार खुलती जा रही
पर्त पर पर्त है।

◇◆◇ १९९४

खतरा !

अब
आदमी नहीं
आदमी को संचालित करेंगी
जिन्सें।
जो कुछ भी होना होगा
होगा इन से।
डॉलर, पौंड, मार्क, येन
का बल, छल
येन केन प्रकारेण
लूटेगा
रहे सहे आदमी को।
कल
आकाश में
ओजोन
के बीच के छेद
पर धरती का बीज
अब जाएगा सीझ
लगेगी दाँव पर
वाशिंगटन-बोन टोकियो लन्दन में
जी भर
चित-पुट
शकुनियों का होगा
सब कुछ होगा
इन्हीं का भोगा।
आदमी के बारे में
अब और कोई
नहीं कहेगा

सच में होने वाला है
ऐसा कुछ
कि आदमी
आदमी नहीं रहेगा।

◇◇◇ १९९३

मन की आँख

तन की आँख नहीं देखती
उसे तो दिख जाता है।
सच में
मन की आँख उसे देखती
जो सहज नहीं दिख पाता है।

तन की आँख—आँख भर है
हृदय की आँख—दृष्टि है
जिसे मन की आँख देखती
वह तो एक अलग ही सृष्टि है।

मैं उस दृष्टि का आकांक्षी
हर सच्चाई को जाने उसे जो दिखती है
और उसे भी जो नहीं दिखती
उसको भी
जो दिखता कुछ है, होता कुछ है
उसे पहिचाने।

दृष्टि
मात्र कैमरा या फिल्म नही
सोच की एक धड़कन है
जिसका
अपना तन है अपना मन है
मन के भीतर अन्तर मन है।

○○○ १९८७

दृष्टि

कोई
बाहर को
आँख से देखे
खिंचेगा बिम्ब अर्थहीन।

आँख देखती भर है
दृष्टि रस छलकाती है।
आँख अटक जाती है
आँख भटक जाती है
दृष्टि हो जाती है आर-पार
खींच लाती है दिग्-दिगंत का सार।

आँख ज्योति का विभ्रम
दृष्टि दर्शन का अनुक्रम
आँख वस्तुओं का संभार
दृष्टि सृजन का संसार।

○○○ १९८७

नजर

हर चीज को देखने के लिए
अवश्य चाहिए एक नजर।

नजर वह नहीं
जो पलकों से घिरी हो
जो पुतलियों में फिरी हो।

सम्मुख को निसंग देखे
वह नजर नहीं
प्राणों की तटस्थता है
अस्तित्व की विवशता है।

नजर के लिए
आँख ही सब कुछ नहीं है
आँख के अतिरिक्त भी
बहुत कुछ है
जिसके सान्निध्य से
बनती है नजर।

००० १९८६

आँख

आँख का प्रत्यावर्तन
एक नई दुनिया का आवर्तन
नहीं, यह मात्र नहीं है आँख
हवा में तैरती-सी पाँख
जो नाप लेती है आकाश
चढ़ जाती है शिखर-शिखर
तैरती है नदियाँ-नाले
बादल कजरारे-काले।

जब चाह करे तभी
विश्व को पुतली में भर लेती है
पर आँसू को
बाहर ढुलका देती है।
धूप को बहलाती है
छाँह को सहलाती है
अंधकार को नहलाती है।

निहारने के नित्य नये आयाम
नई सुबह और नई शाम
आँख है तो जहान है
इसका हर करिश्मा महान है।

आँख है तो रंग-बिरंगे फूल हैं
चाँद-सूरज भी अनुकूल हैं
पहाड़ हरियाली और मधुमास है
सतरंगी इन्द्र धनुष की आस है

आँख तो बस आँख है
हवा में तैरती-सी पाँख है।

○○○ १९८६

आस-पास : १

मेरा आस-पास
विवश, उदास
ऊब से भरा
दूब से डरा
मुझ से सवाल करता-सा
डरता-सा पूछता है
वह ऐसा क्यूँ है ?
क्या वह यूँ ही रहेगा ?
ऐसा होने को यों ही सहेगा ?
मुँह फेर कर
कब तक टाले जा सकेंगे प्रश्न
रोकी जा सकेगी दुर्गन्ध ?

शब्द
अब इन से सुनने लगे हैं
अपने-आप बुनने लगे हैं
वे इस दुर्गन्ध से लड़ेंगे
आगे बढ़ेंगे
उन से प्रश्न करेंगे
जिन्होंने आस-पास को ऐसा किया।
सध जाएँगे गांडीव की तरह
चक्रव्यूह से लड़ेंगे
इस सुगंध को ढकेंगे नहीं
इसकी दिशा मोड़ेंगे
हँसी खुशी आह्लाद से जोड़ेंगे

जहरीले तालाब फोड़ेंगे
कारागार के कपाट तोड़ेंगे
उन से प्रश्न करेंगे
जिन्होंने आस-पास को ऐसा किया।

○○○ १९८३

आस-पास : २

आस-पास
मेरे कान में
बहुत कुछ कह जाता है।
निर्झर-सा
मेरे मन में बह जाता है

मेरा 'मैं'
जो मन के आँगन में
सूखे के ढेर-सा है
वह हरहरा कर ढह जाता है।

आस पास फैल जाता है
मन में
मेरा अपना बन कर
रह जाता है।

◇◇◇ १९८५

चुप

चलो
चुप की ओर चलें
चुप से बातचीत
का एक अलग ही मजा है।

चुप के आते ही
बोल उठते हैं
घर और दीवार
रास्ते और मोड़
धूप रोशनी हवा
जूही और पलाश
दूरियाँ और पास
यादें
और बीते हुए पल
कभी-कभी
आने वाले कल
और मेरा वह भी
जो है सहज
और निश्छल।

१९८८

सोच

सोच को समझ लेना
और सोच को जी लेना
अलग-अलग बात है

सच है सोच को
समझे बिना जिया नहीं जाता
पर यह भी सच है
कि समझ लेने भर से
सोच को सिया नहीं जाता।

○○○ १९८२

सन्दर्भ

सब से हट कर
निपट अकेले
क्या कोई भी पल होते हैं?

सब से कट कर
केवल अपने
क्या कोई सम्बल होते हैं?

संदर्भों से छँट कर
समपूरण
क्या कोई भी कल होते हैं?

०००.१९८३

मनसबदार

सिवा उस जगह के
जहाँ
सूरज और धरती के
बीच कुछ आ गया है
उजाला सभी जगह
छा गया है।

छू रहा है
सूरज कण-कण को
पल-पल को
क्षण-क्षण को।

फिर भी कुछ लोग हैं
जो दीए लेकर
ढूँढ़ रहे हैं
उजाला
कमरे के सब दरवाजों
और दरारों तक को
बन्द करके
अपनी आँखों में
अँधेरा भरके।
सच्चाई को
जान रहे हैं
जो दिखता नहीं
उसे ही मान रहे हैं।

१९९०

चंचल मन

सुबह का
उगता हुआ सूरज है मेरा मन
हर अँधियारे कोने को
टटोलता है
मुँदे नयन खोलता है
सूनेपन के कान में
शब्दों के मंत्र घोलता है।

मौन को देता है स्वर
उलीचता है आलोक
हजार-हजार मुट्ठियों में भर-भर
सारे वातायन को झकझोरता है।
सुबह का
उगता हुआ सूरज है मेरा मन
मेरा तन, मेरा धन
मेरी हरियाली मेरा उपवन।

१९९०

मुझे चाहिए

शाम को घिरते
अँधेरे की तरह
सब तरफ शोर ही शोर
ज्यादातर आर्तनाद
वेदना घनघोर।
या फिर झूठी हँसी
अट्टहास
वेदना को भूलने का
या छुपाने का व्यर्थ प्रयास।
नहीं, सन्नाटा नहीं
मुझे चाहिए थोड़ी-सी चुप
मौन का आभास
गुफा नहीं, खुला आकाश
चिमनी का धुआँ नहीं
मुझे चाहिए विशुद्ध वातास
जिस से समूचा घिरा हो
मेरा आस-पास।

१९९०

अन-अस्तित्व की घड़ी

अन-अस्तित्व की घड़ी
आ सकती है क्या ?
वह घड़ी
जब मैं हो जाऊँ
अस्तित्वहीन
और अदीठ हवा की तरह
अपने आप से उठ जाऊँ ऊपर ?
और फिर जो कुछ भी है
उसे समेटूँ
अपनी आँख में
अपनी पाँख में
सम्पूर्ण यथार्थ से मुखातिब
रूबरू हो जाऊँ
और यथार्थ में स्वयं ही
खो जाऊँ।
और फिर ढूँढूँ अपने-आप को
यथार्थ को अपने भीतर पाऊँ
यथार्थ के दर्द को
उस की असीम ऊँचाई को
उस की गर्द को
उस की सचाइयों को पहचानूँ
और इस तथ्य के जरिये
सत्य को जानूँ
झूठ को पहचानूँ

◇◇◇ १९८०

समग्र

मैं

सब कुछ पाने को दौड़ा
धरती भी आकाश भी
रात भी प्रकाश भी
आह भी उच्छवास भी
पवन भी अगन भी
आल्हाद भी मगन भी
पत्ते फल-फूल व पेड़ भी
खेत भी मेड़ भी
मेह भी नेह भी गेह भी।
कथ्य भी तथ्य भी सत्य भी।
गोया
सारी सृष्टि
सिमट कर बन जाय
मेरी मुट्ठी
मैं था व्यग्र
बन जाऊँ समग्र।
उसी समग्र को ढूँढ़ रहा था
बाहर
वह कहाँ है
अरे! वह तो मेरे पास है
यहाँ है!

१९८०

कामना

मुझे अमर होना ही है
आकाश में उड़ कर
हवा में घुल कर
धूप में धुल कर
माटी में खुल कर
फूल को छू कर
मेरे नयन
फूल में खिले हैं
पवन को छू कर मेरे श्वास
धरती और आकाश में
मिले हैं।

१९८२

शत्रु

मुझे अक्सर कहा जाता है
कि मैं दुश्मन को नहीं पहिचान पाया
खाया तो हमेशा धोखा ही खाया।
वे करते हैं कभी सीधा
तो कभी तिरछा प्रहार
कभी ऊपर
तो कभी नीचे वार।
और मैं सह लेता हूँ चुपचाप
न कभी गिला, न कभी उत्ताप।
क्या सचमुच कोई मेरा बैरी है भी ?
हाँ है, मैं ही मेरा बैरी हूँ
मैं ही अपनी रणभेरी हूँ।
अपने ही शस्त्रों से
मैं होऊँगा क्षत-विक्षत
लहू-लुहान और आहत।
बाहर के बैरी तो
अपने-आप निपट जाएँगे
न हुआ तो हम आपस में सलट जाएँगे
पर भीतर के बैरी को
पराजित करना होगा
वरना मौत के पहले
मुझे मरना होगा।

१९८३

नियंत्रण

एक मन ही है
जो कभी नहीं सोता
चलता रहता है
अनवरत
कुछ-कुछ बुनता रहता है
यहाँ से वहाँ से
चुनता रहता है
और कुछ नहीं तो अपने आप
को धुनता रहता है।
इसलिए
इसे अनसधा छोड़ना
खतरनाक है
इसे लगातार माँजना चाहिए
इस में कुछ-न-कुछ आँजना चाहिए।
ताकि यह जो कुछ बुने
इधर-उधर से चुने
इस उस को गुने
उस में हो
सार्थक अर्थ
व्यर्थ से हट कर सचाई से हो जाय
दिशागम्य
सटीक और समर्थ।

१९८०

पहिचान : १

एक दूसरे की पहिचान
सिलसिला है अनवरत
हर बार पहिचान में
आता है नया कुछ
खुलती है एक नई परत।

हम जो आज हैं
कल नहीं थे
हर दिन नया कुछ
घट जाता है
चाहे बाहर हो
उतर आता है मन में
अनायास अनचाहे
कभी एक बिजली की तरह
कभी गाहे-बगाहे
हर बार बदल जाती है
सत्य की समझ-बूझ
विस्फोट की तरह
कभी-कभी आ जाती है नई सूझ।
इसलिए
हम सब, सब के लिए
कुछ हद तक ही
जाने पहिचाने हैं
अधिक तो अनजाने हैं
इसलिए जारी रहनी चाहिए

यह खोज
हर पल हर रोज।

◇◇◇ १९८०

होना और जीना

होने को
सौ बरस का भी
हो सकता है
आदमी।
और यों
मरने वाले के लिए
कहते भी हैं
कि उसने सौ बरस पा लिए।
पर इसका
यह मतलब तो नहीं
कि उसने सौ बरस
जिये हैं
बरसों न मरना
और बरसों जीना
दो अलग-अलग
स्थितियाँ हैं
एक तो है
विवशता कुछ होने की
दूसरी है कोशिश
कुछ पाने की
कुछ खोने की!

१९८७

दरवाजे

ये दरवाजे
शायद किसी आँधी के कारण
बन्द किये थे
बाहर कोई
अचीती
दस्तक दे रहा था
शायद सोच ही हो
और हम हैं चौंक कर सोचते हैं
कि कौन है ?
यह भी याद नहीं
कि दरवाजे बन्द हैं
इन्हें खोल दिया जाय
सर्द घुटन को नहीं
खालिस जिन्दगी को जिया जाय।
ये दरवाजे
शायद किसी आँधी के कारण
बन्द किये थे !

१९८२

शंका-आशंका

कभी शंकाएँ
उठती थीं
ज्वार की तरह
टूटती थीं
मन से टकरा कर
फिर उठती थीं
हरहरा कर
जीवन हर पल
उन्हें बूझता था
अँधेरे में भी
हमें साफ सूझता था।

पर अब
आशंकाओं का
सागर है
चारों तरफ
कितना फर्क
एक 'आ'
का हरफ!
जीवन
छुपता रहता है
अपने-आप से
आशंका के शाप से।

१९९२

अहम् : १

~

मेरा अहम्
केवल एक बहम
जो अभी तक नहीं टूटा
मात्र एक विभ्रम।

◇◇◇ १९९२

अहम् : २

मेरा 'मैं'
जिद्दी है
अंगद के पाँव-सा
जमीन में पाँव गाड़ कर खड़ा है।
घड़ी
डायरी
कलेण्डर
ये सब चलते और बदलते हैं
पर यह नहीं
यह तो एक ही जगह गड़ा है
न मालूम सोया है कि पड़ा है
यह दुर्गति
विषम रे विषम
न जाने
कब आएगा सम ?

१९९२

खाली मन

क्या सचमुच मन इतना खाली है
जितना लगता है।

या टाल रहा हूँ उसे
जो मन में है
क्योंकि मुझ से मेरा मन नहीं मिलता।

मन से अलग
यह 'मैं' कौन है?
जवाब तो
फिर भी मौन है।

दो विपरीत दिशाओं को
भागता 'मैं'
टूटता ही आखिर।

एक तना है
जो कट गया है बीच से
पर जुड़ा है इसलिए
कि जड़ अभी जमीन में है।

१९९५

छलावा

दूर कहीं देखा था
एक स्वप्न
अपूर्व, स्पृहणीय
अप्रतिम और अकल्पनीय।

बहुत संभव है
वह स्वप्न था ही नहीं
हम खुद ही
अपने-आप को छलते रहे
एक दिवास्वप्न की
अँगुली पकड़ कर
चलते रहे!

○○○ १९९०

सिलसिला

रेस की ट्रेक पर
रोज आता हूँ
रोज होता हूँ, 'वार्म-अप'
दौड़ लगाता हूँ
वो धागा जिस से
सटाना है सीना
या वो जो
पास की रेखा में
खड़ा है।
दिखता है केवल इतना
इस से अधिक हुआ तो
दिखाई देती है
दर्शक दीर्घा
या सुनाई देती है
कुछ करतल ध्वनियाँ।

यह सच नहीं
सच तो
इन से अलग है कुछ
यह जानते हुए भी
क्यों आ जाता हूँ
रोज रेस की ट्रेक पर
क्यों होता हूँ
रोज रोज 'वार्म-अप'
क्यों लगाता हूँ

निरर्थक
दौड़ ?
क्यों, क्यों, क्यों ?

○○○ १९८९

रेगिस्तान और मन

रेत के असीम सागर-सा
मन है मेरा।
कितने ही लोग आये
कितने ही चले गये
कितने ही पद चिह्नों
अंकित हुए।
पर एक फर्क है
रेत पर अंकित
पद चिह्नों को
समय की बयार
मिटा देती है
पर अन्तर्मन पर अंकित
अल्पनाएँ तो अमिट हैं।

१९८९

शाश्वत प्रश्न ?

एक टुकड़ा धरती का
जहाँ आना पड़ा अचानक
पहली इंसानी चिल्लाहट के साथ
इस अचानक आने का, चिल्लाहट का क्या किया जाय

जीना पड़ता है
जहाँ जन्में हैं बिना जाने
इस बिना जाने जन्मने का क्या किया जाय।

कोख देती है पहिचान
यह वह होने की
इस कोख की पहिचान का क्या जिया ?

पहले तो थी ही नहीं
फिर गरीबी ने छुड़ा दी स्कूल
इस न होने व छुड़ाने का क्या किया जाय ?

किसी ने भेज दिया मदरसे
पढ़ा दी एक भाषा
लिखा दी एक लिपि
इस मदरसे व इस लिखे का क्या किया जाय ?

किसी ने बो दिया जहन में
कोई तीरथ, कोई मुकाम़
इस बोने का, इस मुकाम का क्या किया जाय ?

किसी राजा ने बुलाया

आ गया परदेसी बस गया
पा गया सल्तनत
इस बुलाने व पाने का क्या किया जाय ?

किसी ने गिरा दिये मंदिर
बना दी मस्जिद
इस गिराने व बनाने का क्या किया जाय ?

गई पीढ़ी ने किया होगा कुछ
तुम्हारी निगाहों में गुनाह
उस गई पीढ़ी के गुनाहों का क्या किया जाय ?

बिना माँगे मिल गई
इंसान की जून
और हकीकत
इस इंसान की जून व हकीकत का क्या किया जाय ?

वजूद कोई पानी का बुलबुला तो नहीं
जब चाहो बना लो
जब चाहो मिटा दो
इस वजूद के होने व न हो सकने का क्या किया जाय ?

१९९३

हिसाब

अनायास
जब करने लगा
जिन्दगी का हिसाब
जीवन की खोली किताब
तो पाया कि पृष्ठ के पृष्ठ
हैं अनलिखे
जो लिखे उन में
काफी है अपाठ्य
या फिर कटे-कटे
क्या मैं जिया इतना कम
शेष था जीने का भ्रम
केवल भ्रम ?

१९८५

रोज--रोज

दीवाल की घड़ी
के उनमान
उसी एक धुरी पर
किसी और की ऊर्जा से
रोज-रोज चलना ... !

यह गति है
या दुर्गति
या सद्‌गति
दीवाल की घड़ी
के उनमान
उसी एक धुरी पर
किसी और की ऊर्जा से
रोज-रोज चलना ... !

१९८५

दिलासा

ये जो
मेरी नन्ही-सी
कमर है
उस पर लदा है
भारी भरकम बोरा
जिस में ठूँस-ठूँस
कर भरी है
जानकारी, नानाविध सूचनाएँ
औरों के हर
प्रश्न का
इस में माकूल जवाब है।

मेरा तो
कोई सवाल
है ही नहीं?
क्योंकि न तो
उस के
लिए समय है, न जिज्ञासा
न ज्ञान की पिपासा
जीवन पर्यन्त
खाली दिलासा ही दिलासा।

१९८३

क्या बनेगा ?

विश्वास जिनके सहारे
इस पड़ाव तक पहुँचा था
हाथ से छूटे
काच की तरह
किरच-किरच हुए
पड़ गये झूठे
अब इन्हें
बीनने से भी
क्या बनेगा ?
टूटा काच
अँगुली में
या पाँव में गड़ेगा।

१९८३

बहस के अँधेरे

बाहर
चिलचिलाती धूप होगी
मैं तो
बहस के अँधेरे में
घिरा
सुलझा रहा हूँ गुत्थियाँ
जिन के सुलझने से
कुछ नहीं सुलझता।
सुलझता है भी तो
कुछ वह
जो न सुलझता तो भी
चल जाता।

००० १९८२

अनकहा

मन में ढूँढ़ता हूँ
अनकहे को
परत-दर-परत
कुरेदी है।
कहे-ही-कहे की
लगी है ढेरियाँ।
इनको बाहर
निकाल भी लूँगा तो
क्या होगा ?
मात्र पुनरावृत्ति।
इस से तो अच्छा
लगा दूँ वापस
परत-दर-परत
बाहर ही सही, जगह तो रहे!

१९८१

पुनरावृत्ति

मुझे एक बार फिर
आरम्भ की ओर जाना पड़ेगा
यात्रा को पुनः आरम्भ करने के लिए।
यात्रा के इस सर्ग पर
अनायास
अन्धी गली के छोर पर
अपने को पाकर
मैं विमूढ़ हूँ।
इस मार्ग के सभी चौराहों
से काट कर
औरों की नजरों से बच कर
मैं अपने लिए सुरक्षित समझता रहा
सपने की तरह
जिसे कोई और छू नहीं सकता
भोगना तो दूर की बात।
अपनी यात्रा को मैंने
नितान्त वैयक्तिक बनाया
वैयक्तिक रास्ते
तो आखिर
यात्रा प्रशस्त नहीं कर सकते
इसीलिये अन्धी गली के
अन्धे कोने पर खड़ा मैं
पुनः आरम्भ की ओर लौट रह
क्या फिर ऐसी ही किसी यात्रा
की पुनरावृत्ति करने ?

१९८२

मोहभंग

इस यात्रा पर चलने का
निर्णय मेरा नहीं था
होश आया तो
पाया
कि इस यात्रा के
एक पड़ाव को पार कर चुका हूँ।
कहाँ से हुई थी यह यात्रा शुरू
अब केवल एक
विश्लेषण की बात है
एक तेज ढलान पर
यह पडाव आया है
लौटना तो दूर
दिशा बदलना भी दूभर
लग रहा है फिलहाल
यह कैसा विकट जाल !

१९८२

बाहर-भीतर

बन्द खिड़की खोल कर
शोर को
मैंने अपने घर के
भीतर बुला लिया
बाहर अब हो गया
भीतर
अब बाहर अधिक है
भीतर कम है
मेरा घर
अब मुझ में
कहाँ इतना दम है
कि भीतर को बाहर कर दूँ!

१९८३

काट-छाँट

यातना का घना-सा
एक जंगल हूँ मैं
जितनी काट-छाँट होती है
पेड़ बढ़ते ही जाते हैं।

१९८८

अलगाव

आज मैं बड़ी मुश्किल में पडा हूँ
सब चले गये हैं
मैं नितान्त अकेला
अपने सामने खड़ा हूँ।

जो निखालिस मैं हूँ
उसे पहचानना पड़ेगा
वह कितना कम है
कितना छोटा है
यह जानना पड़ेगा।
सचमुच मैं बड़ी मुश्किल में पड़ा हूँ।
अभिमान की सूखी हुई लकड़ियाँ
और अपमान की सुलगती हुई आग
दोनों ही मिल गये हैं मेरे मन में
आँसू बहुत कम हैं इन्हें बुझाने के लिए।
मेरी आँखों में, मेरे तन में
और यह आशंका भी निराधार नहीं
कि मैं अपने-आप से जुदा न हो जाऊँ कहीं। ○○○ १९८१

नियति : १

मैं
एक
करवट बदलती हुई
सडक
या शायद 'एलीवेटर'
हर कोई पा जाती है गन्तव्य
और मैं हूँ
कि वहीं का वहीं अडा हूँ।
न स्वयं के पास
और न स्वयं से दूर खडा हूँ।

१९८८

कामना

शाम का घिरते
अँधेरे की तरह
सब तरफ शोर ही शोर
ज्यादातर आर्त्तनाद
वेदना घनघोर
या फिर
झूठी हँसी, अट्टहास
वेदना को भूलने का
या छुपाने का व्यर्थ प्रयास
नहीं, सन्नाटा नहीं
मुझे चाहिए थोड़ी-सी चुप
सोचने की फुर्सत
शोर के अँधेरे से दूर
सोच का भोर।
अपने में समाने की ठौर!

[illegible] १९८७

मौसम भीतर का

बाहर की मौसम से
बहुत अलग है मौसम
भीतर का।
मैंने लेकिन भीतर के
मौसम को
सम्पूर्ण समझ लिया है,
उस को ही लगातार जिया है
जितनी प्यास थी
उतना ही पानी पिया है।

आस

३

गीतों की मिजराब
आहिस्ता फिर तेज
जैसा साँवरिया वैसी सेज।
बजा रही है मुझे
गीत उठाने की आस में
किसी अचीते विश्वास में।

००० १९८०

लय

पहले लिखता था गीत
मेरे अनन्य मीत
अब लिखता हूँ लय
जो पहले कुछ और थी
अब हो गई मुझ में विलय।

१९८१

उपमा की तलाश

उपमा की तलाश करते-करते
ठहर गया गीत
द्वार पर आ कर जैसे
रुक गया मीत।

१९८१

गीत के बारे में

गीत को तो
कमल होना चाहिए
कीचड़ में रह कर भी सुवासित
अपने सहज सौन्दर्य से स्निग्ध।
ऐसा होता है तब
जब वे धरती से जुड़े होते हैं
बीज से बड़े होते हैं
सहज-जन्मा
अपने मुकाम पर खड़े होते हैं।

गीत कीचड़ हो जाते हैं
अगर इन्हें
बाजार में लाया जाय
जिंस की तरह दुकानों पर सजाया जाय
बनावटी देहों पर
पहना कर
जो निपट निर्जीव हैं
कूड़ा भर।

गीत को जब
वेश्या की तरह
कोठे पर बिठाया जाय
सिक्कों के साजों पर
छेड़ा जाय
सेजों पर बिछाया जाय

जो आदमी को चालों
की मानिन्द
किराये पर उठाते हैं।
कीचड़ अब चलने लगा है
चलने ही नहीं
मचलने लगा है।
गली-गली में
डगर-डगर में
गाँव-गाँव में
नगर-नगर में
वह बन गया है
आकाशवाणी!

ऐसे में
कमल बचेगा भी?
कोई कमल रचेगा भी?
रच भी दिया तो
कोई उसे पहिचानेगा?
वो तो कमल को कीच
और कीच को कमल मानेगा!

१९८०

फिर से मैंने गीत लिखा है

मैं लाया था यह समझाने
मेरा रहकर सब पहिचाने
मिला भीड़ में भीड़ हो गया
मेरा था पर कहीं खो गया
इतने दिन से आज दिखा है।
फिर से मैंने गीत लिखा है।

बाहर भीतर शोर बहुत था
अंधकार घनघोर बहुत था
मिला शोर में शोर हो गया
अंधकार में कहीं खो गया
फिर सुलगी यह दीप-शिखा है।
फिर से मैंने गीत लिखा है।

मैं लाया था दर्द बँटाने
सब की पीड़ा को दरसाने
घबराया फिर चुप हो आया
मुझ से अब तक जी कतराया
मेरी मुझ को मिली बिखा है।
फिर से मैंने गीत लिखा है।

१९८८

कुछ खाली-खाली-सा मन

दूर वहाँ पर कौन खड़ा है
मुस्काता पर मौन बडा है
मुझ से दूर खडा आलिंगन।

मेरा भीतर मुझ से बाहर
मेरा सारा बस इतना भर
घर से बाहर घर का आँगन।

मेरा सुर ही मुझ से रूठा
बीच गीत के सम क्यों टूटा
उलझा-उलझा मन का सरगम।

मेरा है भी और नहीं है
मुझ को छूकर और कहीं है
मेरा अपना ही स्पन्दन।

बाहर से ही परस रहा है
मेरे भीतर तरस रहा है
मेरा होकर मेरा जीवन।

मन टूटा तन की बारी है
फिर भी सब-कुछ से भारी है
गहराता जाता सूनापन।

बाहर उतना बरस रहा है
सब कुछ इतना सरस रहा है
पर मन का मुरझाया मधुबन।

कोई मुझ को टेर रहा है
पूरा मुझ को घेर रहा है
अलसाया सुरभित कानन

मेरा आकर मुझे बराए
मन मेरा अपना पा जाए
मुझ को बाँधे मेरा बन्धन।

[illegible] १९८०

आओ हमीं जलें

घनघोर तम है तो क्या
आओ मशाल लें।
इतना भी कम है तो क्या
आओ हमीं जलें।

जो थे विनाश से
अनथक सदा लड़े
थक कर उदास से
भ्रम से उलझ पड़े
इन को दिशा मिले
ऐसे खयाल दें।

सहमे हुए कदम
ठहरे बढ़े हुए
अब कुछ न बोलते
गुपचुप खड़े हुए
दे ही पड़े जवाब
ऐसे सवाल दें।

१९८०

प्रेम-कहानी

रेती के सिकते सागर में
एक अंजुरी भर ज्यों पानी
ऐसी ही है, ऐसी ही प्रिय
तेरी मेरी प्रेम कहानी।

एक प्यास का सागर मन में
लेकर कितने जन्म जिये हैं
कितनी बार बना भगीरथ
जनमेजय से यज्ञ किये हैं
तब मेरे प्यासे आँगन में
आई तुम गंगा-सी रानी।
ऐसी ही है, ऐसी ही प्रिय
तेरी मेरी प्रेम कहानी।

मेरे तरसाये आग्रह पर
जब मेघों ने ही नयन झुकाए
पल छिन हुए ठहर कर शाश्वत
अमृत के सागर लहराए
शब्द गये मुझ से कतरा कर
जब चाही यह बात बतानी।
ऐसी ही है, ऐसी ही प्रिय
तेरी मेरी प्रेम कहानी।

फिर भी प्यासा हूँ तो उस में
कहीं तुम्हारा दोष नहीं है
हर दे सकने की सीमा है

लेने की हद कभी नहीं है ?
दे देने की पहुँच माठ पर
लेने की दूरियां बढ़ानी।
ऐसी ही है, ऐसी ही प्रिय
तेरी मेरी प्रेम कहानी।

००० १९८०

सपने क्षार हुए

सपने क्षार हुए
अपनों के अपनेपन से
हम बेजार हुए।

जब भी अकेले थे
डसता था अकेलापन
सुलग पड़े लावे
जब दो चार हुए।

जब सोच नहीं थी तो
जीना बेकार लगा
अब सोच के पैमाने
सब बेकार हुए।

जिन विश्वासों से
इतिहास बदलना था
कुछ दौर हुआ तारी
बे-आधार हुए।

१९८०

अकाल

सुलग रहा आकाश कि धरती तड़क गई है
आँखें करे तलाश कि बरखा भटक गई है।
नहीं कहीं पर छाँव
सूने सारे ठाँव
बस्ती उधर गई है
जिधर को सड़क गई है
सुलग रहा आकाश कि धरती तडक गई है।

मुरझाई है साख
सूनी है हर आँख
उधर मेड़ के पास
ढेर-सी पाँखें झटक गई हैं।
सुलग रहा आकाश कि धरती तड़क गई है।

सूख गई है घास
टूट गई आस
चूल्हे पड़े उदास
कि साँसें सटक गई हैं
सुलग रहा आकाश कि धरती तडक गई है।

जले रूँख के रूँख
सूख गये हैं पूँख
ठीक नाज के पास
भूख की अगनी कड़क गई है।
सुलग रहा आकाश कि धरती तड़क गई है।

कहीं बाढ़ पर बाढ़
कहीं झाड़-झंखाड़
नहीं मोड़ती मोड़
कि नदियाँ अटक गई हैं।
सुलग रहा आकाश कि धरती तड़क गई है।

पड़े चाँद पर पाँव
पर बचा सके ना गाँव
सूखे पड़े विकास
युद्ध-सी ज्वाला भड़क गई है।
सुलग रहा आकाश कि धरती तड़क गई है।

दूर-दूर तक प्यास
यह सूखा संत्रास
चुपके से आकर जाने
कब लहरें लटक गई हैं।
सुलग रहा आकाश कि धरती तड़क गई है।

बादल आये भी
आसा सहज बँधी
बिन बरसे बदली जाने से
मन में टसक गई है।
सुलग रहा आकाश कि धरती तड़फ़ गई है!   १९८०

सपन-संसार

मीलों के पत्थर हैं तारे इन को पार करेंगे हम-तुम
अपने ही सपनों के जैसा यह संसार गढ़ेंगे हम-तुम।
थोड़ा ही आकाश सही
पर सब का होगा
थोड़ा ही उल्लास सही
पर सब का होगा
इस के खातिर अगर जरूरी तो संघर्ष करेंगे हम-तुम।
अपने ही सपनों के जैसा यह संसार गढ़ेंगे हम-तुम।
मीलों के पत्थर हैं तारे इन को पार करेंगे हम-तुम।
हम ने छोड़ा—पीछे दूर
क्षितिज को छोड़ा
हम ने जोड़ा धरती और
गगन को जोड़ा
वातायन में नहीं जहर का अब बारूद भरेंगे हम-तुम।
मीलों के पत्थर हैं तारे इन को पार करेंगे हम-तुम।
अपने ही सपनों के जैसा यह संसार गढ़ेंगे हम-तुम।

संकल्पों के विजय-चिन्ह
मुट्ठी से तारे
दिग्-दिगन्त में गूँज गए
नारे ही नारे
इस धरती पर मुस्कानों का अब इतिहास गढेंगे हम-तुम।
मीलों के पत्थर हैं तारे इन को पार करेंगे हम-तुम।
अपने ही सपनों के जैसा यह संसार गढ़ेंगे हम-तुम

१९८०

आसमान में विष बरपा है

आसमान में विष बरपा है साँस घुट रही फूलों की
फूलों की क्यारी में बोई जाती फसल बबूलों की।
माली ने अंगारे बोये
हवा दे रहे हैं बादल
सुलग रही है क्यारी-क्यारी
टसक रहे हैं अटके हल।
ऐसे में आने वाली है बाढ़ खेत में शूलों की।
आसमान में विष बरपा है साँस घुट रही फूलों की।

मेहनत की खेती को फिर-फिर
और दूसरा काटेगा
फसलों को लूटेगा, फिर-फिर
भूख सभी को बाँटेगा।
लहू से बुझने वाली है आग घरों के चूल्हों की।
आसमान में विष बरपा है साँस घुट रही फूलों की।

कभी साफ दिखते थे वे ही
स्वयं रास्ते भटक गये
सभी किनारे टूट रहे हैं
ठीक लक्ष्य के पास पहुँच कर
सभी इरादे अटक गये बाढ़ उठी है भूलों की।
आसमान में विष बरपा है साँस घुट रही फूलों की।
सूरज के हाथों से लगता
अँधकार बंटने वाला

जिस मुकाम पर पहुँचे थे कल
वह मुकाम हटने वाला
दिशा-दिशा में उड़ी अचानक आँधी भ्रमित बगूलों की।
आसमान में विष बरपा है साँस घुट रही फूलों की।

◇◇◇ १९८०

मन

बिना लिखा कागज-सा मन।

बालू का एक ढेर घना-सा
मन आँगन में सहज बना-सा
साँसों ने बाँधे हैं कण-कण
बिना लिखा कागज-सा मन।

बिना छोर का एक गगन-सा
बिना शोर के वृहद् विजन-सा
गहराता जाता सूनापन
बिना लिखा कागज-सा मन।

कोई तो तूफान उकेरे
गुपचुप आकर हलचल घेरे
पलकों में आ जाये सावन
बिना लिखा कागज-सा मन।

१९८०

प्रश्न चिरंतन

साढ़े पाँच दशक
का फलक मेरा
न-मरने के नाप से नापूँ
तो आकाश एक सिन्धु-सा
जीने के नाप से नापूँ तो
आकाश के एक बिन्दु-सा
क्या लिखा है इस पर ?
कुछ लकीरें, कुछ अक्षर
कुछ अर्थ है
या कुछ समझ में आये
जैसा आया है उभर कर ?
कुछ भी न होने से
क्या इसे 'एब्सट्रेक्ट पेण्टिंग'
कहना पड़ेगा
या प्रयोगवादी
कविता !
इसे नहीं तो किसे कहते हैं
अर्थ न होने की
विवशता।

[illegible] १९९१

आज

आज
एक बहता हुआ झरना है

शाम की घाटी में होता हुआ
रात की गहरी सुरंग
में समाता है

और फिर
रोज सवेरे
उग आता है

जिन्दगी के
अविरल गीत
नये आज के साथ
गाता है।

१९८०

कल से जुड़ा आंज

मेरा आज
आज दिन तक
मात्र आज था
कल के बाद वाला आज नहीं।

आज मैंने उसे
गये कल से जोड़ दिया
आज के अकेलेपन को तोड़ दिया।
और ऐसा होते ही
मेरा आज
आने वाले कल से जुड़ कर
सुहाना भोर हुआ
अकेलेपन की यातना से
छूट कर
आनन्द विभोर हुआ।

१९८०

कल

गया हुआ कल
एक याद भी है
एक समाधि भी।
उसी का स्मरण है
आज
एक चढ़ाया हुआ फूल।

१९८०

दिन रात के बीच

दिन और रात के बीच
यह क्या है
उजाला या अँधेरा ?
सुबह, दोपहर शाम ?

धूप-छाँह
या कम होती बढ़ती
परछाई ?

या एहसास
कुछ गये का ?
कुछ नये का ?
या तेवर है बदलते हुए वक्त का ?

जो अदृश्य होते हुए भी
घेर लेता है मुझे
सब कुछ के परिप्रेक्ष्य में
कुछ होने के
सापेक्ष में।

१९८१

मजबूरी : १

एक के बाद एक
पल को
पिरोया मनके की तरह
और अब उन्हीं
पलों को
बार-बार टटोलता हूँ
जोड़ता हूँ
खोलता हूँ
उन्हें जीता हूँ बार-बार
एक आदत की तरह
बिना आस्था की इबादत की तरह
मजबूर सदाकत की तरह
एक सहज हिमाकत की तरह।

१९८१

जीना

हर क्षण को
पूरा का पूरा जिया जाय
अनजिया न रह जाय
उस का एक भी टुकड़ा।

हर कण को
सम्पूर्णत: पाया जाय
अनपाया रह न जाय
एक भी अंश।

न क्षण छिने
न कण
छीना जाऊँ मैं
जो आदमी हूँ
क्षण व कण का भोक्ता
न भरेगा किसी और से
लुट जाने का दंश!

१९८१

दिन

२

एक दरिया की तरह दिन
अहर्निश चलता रहता है।
उजाला बन कर
सुबह शाम की धारा के बीच
लगातार
बहता रहता है।

०० १९८१

यात्रा

१

जहाँ से चले थे
क्या लौट आये हैं वहीं
घूम फिर कर ?

कहीं ऐसा तो नहीं
कि हम चले ही नहीं
जहाँ थे
खड़े हैं
वहीं के वहीं ?

१९८१

बेखबर

⌓

मुट्ठी में
कस कर
बन्द किया हुआ था
पता नहीं
पोरों से निकल कर
कब चला गया
समय ?

○○○ १९८२

व्यग्र मैं

ॡ

आँखों को चुँधियाता प्रकाश
तपती धूप
थक कर
सोने को तत्पर
रंग-मंच पर 'फेड-आउट'
की तरह बुझने लगा है दिन
अँगड़ा रही है साँझ
रात का पहला दिन।

अजीब बात है
या संयोग ही है
दिन पुल्लिंग है
रात नहीं
आराम की चादर ओढ़
शांत सो रहा है सूरज
और मैं?
और मैं?

१९८२

जन्म दिन

हर वर्ष
आता है जन्म दिन
हर बार उसे जीता हूँ पुनः पुनः
और हर बार जीता है वह
मुझे शनैः शनैः।
इस बेतहाशा दौड़ में
अपने होने का एहसास
होता है पल दो पल
और उस के बाद का कल
शुरू करता है
अपने-आपको दोहराना
जैसे गीत की टेक के बाद अलग
'टेक' व 'री-टेक'
सतही रूप से अनेक।
आँकड़ों का उत्कर्ष
पर उम्र की ढलान पर
खिसकता है
हर वर्ष।

न तो मैंने चुना इसे
इस ने भी कहां चुना मुझे!
मैं उस दिन हुआ था
या यह इस दिन हुआ था
जब मैंने छुई थी धरती
छुआ था आकाश

छुई थी एक ममता भरी गोद
एक मुट्ठी तनी थी
और सारी सृष्टि ने
मेरे होने की चीख सुनी थी।

जिस की कोख हरी हुई थी
उस ने प्यार से देखा
और उठाया था मुझे
और थमा दी थी
जन्म-दिन की अँगुली।
उसे पकड़ कर चलता भी रहा
समय को गिनता भी रहा।

हर वर्ष
जन्म-दिन की अँगुली
करती रही संकेत
अभिप्रेत
के पड़ाव की तरफ।
जन्म-दिन एक हरफ
जो समेटता है
एक बीते हुए का कलेवर
बीत जाने का एहसास
संधिस्थल के पास छोड़ कर
हो जाता है गुपचुप
पूरे वर्ष के लिए।
जन्म-दिन का निरास
जो चला गया उस के लिए
एक आस
जो जगी आने के लिए।

जन्म-दिन एक आँसू
उस के लिए जो बीत गया
एक हर्ष उस के लिए
जो जीत गया।

जन्म-दिन एक श्रद्धांजली
बीते हुए कल को
अभ्यर्थना की अंजुरी
आने वाले कल को।

जन्म-दिन
होने
न होने का एहसास
एक साथ।
जन्म-दिन
एक हाथ
जो गये को करता
आने के साथ
पुनः होने का परिदृश्य
जीने के पहले दिन का स्पर्श।

१९८२

याद : १

प्रतीक्षा के अँगूठे से
कुरेदता रहा
याद की जमीन।
थक गया अँगूठा
पथरा गई है धरती
हो गई है परती।

१९८३

याद : २

कभी-कभार
मन के क्षितिज पर
यादों के घने बादल
जाने कहाँ से घिर आते हैं
लौट-लौट कर फिर आते हैं

याद भी ऐसी
जो मिट-मिटा गई थी
फिर से उमड-घुमड़ आई
दमक उठी [illegible]
बरस-बरस उठे [illegible]
भीगा-भीगा-सा मन।

[illegible] १९८३

याद : ३

हर रात लगती है भीड़
आकाश में तारों की।
हर रात इस भीड में
अलग मुस्कराता है चाँद।
हर पल जुटी रहती है
मन में
यादों की भीड।
पर कुछ यादें होती हैं
जिन की अलग ही पहिचान
तारों में चाँद की तरह
वो याद
तुम्हारी है
तारों से अलग
चाँद के उनमान।

१९८३

अनोखी जीत

शरत बाबू ने कहा है
मन की अदालत में
सब फैसले
होते हैं इक-तरफा।

फैसले तुम्हारे और मेरे भी
इक-तरफा हुए हैं
भले मेरा तुम्हारे पक्ष में
और मेरे पक्ष में तुम्हारा
इस तरह से विजयी हुए दोनों
न तुम हारी, न मैं हारा
सहज में
जीत लिया जग सारा।

१९८२

गांधारी नहीं सावित्री

शायद तुम्हें बनना पड़े मेरी आँख
मेरी पाँख।
अँगुली पकड़ कर चलना पड़े
बनना पड़े मेरी छाँह।
पकड़नी पड़े
मेरी बाँह।
नहीं मुझे गांधारी नहीं
सावित्री चाहिए
जो गोद में सुला कर
सहारा दे कर
खड़ा कर सके
मेरा जीवन बन कर
मुझे जिला सके।

अमरत्व

अमरत्व मिला है
मुझे तुझे पा कर

तुझे पा कर
मैंने अपने आपको
पुन: जिया है
जीवन को
जी भर कर
पिया है।
जितना ले सकता था
उस से कहीं
अधिक लिया है।

१९८३

अमरत्व की सीढ़ियाँ

किसी ने
छोड़ा अपना दंश
और अपना अंश
मैंने उसे जिया
आगे बढ़कर उसे
मैंने तुम्हें दिया।

इसी तरह से
चल रही है पीढ़ियाँ
यही तो है
अमरत्व की सीढ़ियाँ!

१९८३

विकल्प

अपनी अँगुली पर
आज तक लपेटा ही है
अबकी मुझ पर लपेट लो
अपना आँचल।
अपना बना कर तो
आज तक जिया ही है
अबकी मुझे जी लेने दो
तुम्हारा पल पल।
अपने लिए हुए तो
हुए क्या
बात तो तब है
हो जाय औरों के लिए विह्वल।
जहाँ तक अपना सवाल है
सभी हुआ करते हैं
बात तो तब है
जब बना जा सके
किसी और का सम्बल।

००० १९८३

धड़कन

आ जाओ
बहुत देर इंतजार है
धडकन का।

उस धड़कन का
जो तुम से कहीं अधिक
मेरी है।

१९८३

विराट

मैंने सब कुछ तुम्हीं में देखा।

निस्सीम गहरा आकाश
घुमड़ते बादल
बल खाती बिजली
बरसता हुआ मेह
भीगती हुई धरती
फूटते हुए बीज
लहलहाती हरियाली
गमकता हुआ पवन
फहरती तुम्हारी विजय पताका
तुम्हारे होने से हुआ यह
सब कुछ
और मैं भी।
भले होगा सत्य और
पर मेरे विश्वास से बड़ा
और अलग सच
हुआ भी तो क्या हुआ ?

१९८३

कहा-सहा

एक चौथाई शताब्दी से
तीन वर्ष अधिक
मैंने तुम्हें कहा
तुम ने मुझे सहा।

और इस कहने व सहने के
बीच जीवन चलता रहा
सतत अनवरत धार-सा बहा।

१९८३

करिश्मा

अंतस के आलय में
टिमटिमा रही है
रोशनी प्यार की
जो किसी ने
अनायास जलाई थी।
वह आज भी
अपने ही स्नेह से
निर्धूम जल रही है
जलती रहेगी
आँधी आये चाहे झंझावात
इस लौ की बस यही करामात
कि अंतस के आलय में
वह आज भी टिमटिमा रही है।

१९८३

हादसा

मुझ से एक अजीब
हादसा हुआ
मैंने तुम को छुआ।
ऐसा लगा कि
सारा गगन-मंडल
मेरे भीतर समा गया
और मेरे भीतर की
प्राण-वायु ने
समूचे बाहर को
परिवेष्ठित कर लिया।
मौन वीणा के तार
स्वतः झंकृत हो गये
मेरी रग-रग
मेरा श्वास-प्रश्वास
मेरा रंध्र-निरंध्र
अनहद नाद से
आप्लावित हो गये
मुझ से एक अजीब
हादसा हुआ
मैंने तुम को छुआ।

१९८३

अपने-अपने बीज

आई सावन की तीज
अपने-अपने बोएँ बीज।

कुछ इस तरह
निराले रंग से बोएँ
कि व्यर्थ
एक भी बीज को न खोएँ
कि तुम्हारे बीज पर
मेरा सुमन खिले
और मेरे बीज पर
तुम्हारी कली मचले।

पर पहले
उन्हें अंकुरित होने तो दो
फिर करेंगे तय
कौन प्रचुर ?
कौन सुन्दर ?
एक दूजे से बढ़ कर।

१९८५

कल-आज

कल
जिसे मैंने जिया
या जी चुका
उस कल पर खड़ा
मैं जी रहा हूँ
आज।

○○○ १९८१

इन्तजार

इंतजार है अभी भी
उस एक क्षण का
समय के उस छोटे-से कण का
जिस में अपने आपको पालूँ।

१९८८

कितने दिन

कितने दिन हो गये मुझे चलते-चलते
दिन के दिन उगते-उगते
सूरज के सूरज ढलते-ढलते।
आँख और मन में सब [illegible]
सपनों पर सपने पलते-पलते।
मन के उजियार अचानक
मरण की तरह जलते-जलते। १९.

कितने दिन हुए

कितने दिन हुए मुझे
सहज मुस्कराये हुए
मस्ती से गीत गाये हुए
सपनों को सजाये हुए।

हर रात दबे पाँव
चुपके से आता है दिन
जाने कब नींद से चिपट जाता है
सपनों से लिपट जाता है।
रात और दिन का अन्तर
शून्य का अवसाद भर।

दिन तो कहने को अपना होता है
अपनी तो होती है दरअसल रात
ज्यादा से ज्यादा सांध्य-प्रभात।
कितने दिन हुए मुझे सोये हुए
विस्मृतियों में खोये हुए
कितने दिन हुए निशा को आये हुए
अपने को पाये हुए
सपनों को जगाये हुए
कितने ?
कितने ?
कितने ?

१९८१

नया वर्ष

समय के
शिखर की
सरक गई
एक सीढ़ी
और।

खत्म हुई एक पीढ़ी
खत्म हुआ है
एक फिर से
दौर।

पर सचमुच में बदला है क्या
कुछ भी ?
यह वह
या तुम भी।

बदला है तो
यह कि बढ़ी है
भूख।

विरल हुआ है सब कुछ
हवा, रोशनी और धूप
पानी गया है
सूख।

दिन

केवल सूरज का
उगना और डूबना
दिन भर नहीं होता।
न होता है वह केवल
उजास का बहता हुआ सोता।
उस में
प्रत्याशित, अप्रत्याशित
बहुत कुछ होता।
गया हुआ दिन
सिमिट जाता है
वह फिर उग आता है
और यह अटूट सिलसिला
चलता चला जाता है।
सप्ताह, महीना, वर्ष
शताब्दी
एक पूरा का पूरा युग
दिन का होना ही तो होता है
हर एक दिन में
पूरा इतिहास सोता है।

१९९४

वर्तमान का परिदृश्य

सागर भर रत्न हुए तो क्या
जब सूखा पोखर मन हो ?

अम्बर भर यत्न हुए तो क्या
जब भूखा हर जन-जन हो ?

पर्वत भर उत्कर्ष हुए तो क्या
जब उजड़ा हर आँगन हो ?

सदियों भर वर्ष हुए तो क्या
जब आतंकित हर क्षण हो ?

१९९४

इतिहास और समय

इतिहास
न तो पाटी पर
लिखी गई
इबारत है
जिसे जब चाहे मिटा दिया जाय
न पैंसिल से लिखा गया शब्द है
जिसे मिटा दिया जाय रबड़ से
और लिखा जा सके नया
जो घटित हो गया उसे।

समय ऐसा वाहन भी नहीं है
सामने रखी जाय
हर दम नजर
और 'बैक गीयर' पर
चलाई जाय लगातार
तेज रफ्तार।

घड़ी या घड़ियाल भी नहीं है
समय
जो सुईयों के घुमा देने से बदल जाय
या लौट जाय पीछे।
इतिहास वह नींव है
वह सींव है
जिसे गढ़ गया है समय।

जो बीत गये को
जी कर
बढ़ता है आगे
जो मुड़ कर पीछे न भागे।
वह हर पल नया
सृजन करता है।
रीती गागर को
पुनः-पुनः भरता है।
लाख अँगुलियाँ
जिसका निर्माण करती हैं
बीते को सँजो कर
भविष्य का आह्वान करती हैं। १९९३

दुर्दशा ?

ऊँघता है दिन
जागती है रात।
क्या हो गया है
समय को ?

१९९४

कालचक्र

'आरफिरियस'
के पहिया-सा
अनन्तकाल से
चला आ रहा है कालचक्र
और चलेगा
अनन्त काल तक
जब तक उस की ऊर्जा है जीवन
वहाँ है जो यहाँ है
सब कहीं है
पत्तों में है
फूल में है
उड़ते हुए दुकूल में है।
आसपास की महक में है
हँसी में है
चहक में है
गोया यह कि
वह कहाँ नहीं है ?
यहाँ नहीं
वहाँ नहीं है
कहाँ है वह
वह जहाँ नहीं है।

कूल में है
धार में है
नाव में है

पतवार में है
रूप में है
शृंगार में है
स्नेह में है
प्यार में है।
अनबूझी समस्या में है
प्रतिकार में है।
आँख में है
पाँख में है
हर बीज में है
हर साख में है।
समझे गये सत्य में है
कहे गये कथ्य में है
पाये गये तथ्य में है।
बात यह सही है
कि अगर कुछ है
तो वही है।
पर 'आरफिरियस'
की तरह
कोई पाना चाहता है
उस का मूल्य
मूल्य में
कुछ सिक्के
और न मिलने पर
प्रतिश्रुत है
उस के विनाश को
ब्रह्मास्त्र को तान
भस्मासुर होकर।
'आरफिरियस'
जिस युग में तुम जिये

तोड़ चक्र और विनाश को भागे
कालचक्र अब वहाँ नहीं है
बहुत निकल गया है आगे
नहीं, उसे उलटा नहीं घुमाया जा सकेगा।
पुरानी बात है यह
कि इतिहास
दोहराया जा सकेगा
इतिहास तो बढ़ता है आगे ही आगे
चाहे न समझ सके
'आरफिरियस' से अभागे
विनाश का चक्रव्यूह
अब व्यर्थ है
जीवन का अर्थ है
उस की ऊर्जा
अजस्र धार
जो अपरिहार्य है
अजेय है
जितना कोई न हो सका
उतना समर्थ है।

[illegible] १९९२

मजबूरी : २

जो हो चुका है
मुझे हर पल टेरता है
मेरे सर्वस्व को घेरता है।

मेरा वर्तमान
हो जाता है
अस्पर्श्य
कितना कठिन है
वर्तमान में जीना।

१९९२

वर्तमान

वर्तमान की धमनियों में
पूरा का पूरा अवरोध।
रुक गया है प्रवाह
सन्नाटे में आ गई कराह
बंद हुआ प्रतिरोध।
ठहर गई है
हवा बदलती ही नहीं।
इधर-उधर सब कहीं
ठहरता हुआ
और अधिक गहराता हुआ
गतिरोध।

१९९३

अपनापन

रात और दिन
देश और काल
तुम्हारे बगैर क्या है ?
साँझ व सुबह का
विवर्ण अन्तराल।

तुम्हारी याद
पूर्णिमा का चाँद।
ज्वारभाटा
हो रहा है
उत्तप्त उन्माद।

तुम सीमाहीन आकाश
और मैं विभ्रान्त क्षितिज
तुम्हारी मेरी यही पहिचान
तुम अनवरत बयार
और मैं चिलचिलाती धूप क्लान्त।

तुम सघन रूँख
और मैं श्यामल छाया
तुम हो सुनहरा प्रभात
और मैं चाँदनी-सी माया
तुम चिर शाश्वत
और मैं क्षण भंगुर

अविच्छिन्न हैं परस्पर फिर भी
सुधा का सागर हो तुम
और मैं बरसता बादल।

तुम कजरारे नयन
और मैं पलकों का काजल।
तुम्हारा और मेरा प्रिय
ऐसा ही है अपनापन।

◇◇◇ १९९४

तुम्हारे बिना

जब तुम नहीं होते पास
तो न आती नींद
न आते सपने।
करवट बदल-बदल कर ढलती है पूरी रात
सुकून होने का एहसारा।

तुम्हारे बिना
क्या रात, क्या दिन ?
खाली-खाली है हर पल-छिन।

तुम्हारे आने की
आहट सुन
जाग उठी ले अँगड़ाई
सोई कुदरत
रुनझुन-रुनझुन

तुम्हारी सुगंध
भर जाता है राब कुछ
विशेषत: मैं
निश्चय ही होगा अब कुछ।

१९९४

अनमने पल

ऐसा क्यों लगता है
कभी-कभार
कि सब कुछ हरहरा कर टूट गया है।

हम भले चले हों आगे
सब कुछ पीछे छूट गया है।

जो छूट गया है
उस के और हमारे बीच
सूना-सूना है
सभी कुछ।
हर-पल अनमना है
अभी कुछ।

५९९४

बरसगाठ

साढ़े छह दशक
मुझे जी गए हैं।
एक जाम था मैं
उसे पी गए हैं।
जीवन
या फकत समय का
जिया जाना
इसे क्या कहा जाय ?
समय की सुरंग में
जैसे तैसे रहा जाय ?
इस रहने भर के बाहर
बहुत कुछ है
धूप छाँह
हँसी आह।
बहुत कुछ है
सदी-दर-सदी
बढ़ता रहता है
समय को निरन्तर गढ़ता रहता है।
उसी को पढ़ूँ
या कुछ नया गढ़ूँ
अगली सदी
न जिये मुझे
बल्कि मैं जीऊँ उसे
तभी मेरी
प्यास बुझे

गरल को अमृत बना कर
उसी में नहाऊँ
रवि कहलाऊँ !
साढ़े छह दशक
मुझे जी गए हैं
एक जाम था मैं
उसे पी गए हैं।

◇◇◇ १९९३

एक त्रासदी

ऐसा बहुत कम हुआ है
जब सुबह की
किरण ने मुझे छुआ है
और मैं देख पाया हूँ
उगते हुए सूरज को
अधिकतर यों हुआ है
कि धूप ने मुझे जगाया है
कान में बतिया कर
उठाया है।
ऐसा भी कम हुआ है
जब मुझे दिख पड़ी हो शाम
यानी रात के आने का एहसास
लाज से गुलाबी होते कपोल
कुछ यों हुआ है
कि आधी रात की हथेलियों ने
जबरदस्ती ढक दी हैं आँखें
सिमटी हैं तो
सिमटी हैं थक कर
यकायक
भारी होती हुई पाँखें।
सुबह और शाम
शब्द भर हैं
सच है
अलसाए हुए उठना
और थके हुए सोना

१९९३

पहिचान २

समझ की देहरी पर
पाँव रख ही रहा था
कि किसी ने मुझे पुकारा था।
अपने स्नेह से सुवासित किया
और मुझे दुलारा था।

एक नये क्षितिज के द्वार खोले थे
अपने से बाहर के मीठे बोल
मन में अनायास घोले थे

एक नये एहसास को जगा कर
हो गया अंतर्धान
मुझे हुई अपनी पहिचान।

वही पहिचान
चिह्नित करती अब
सब का सब।

१९९३

सच

इधर
उधर
अमर-अजर
क्षण भंगुर
चराचर
अब
तब
कब कब
सब
मेरे और तुम्हारे होने से
सब कुछ हमारे होने से
सच है
हमारा होना
और हम से ही
सच है सच।

१९९३

संस्पर्श

एक दर्श
जो जब से हुआ
टूटा ही नहीं
एक स्पर्श
जब से छुआ
छूटा ही नहीं
वह छवि और छुअन
में समा गया
धरती और भुवन।
अजर अमर
अचराचर
सब कुछ हो गया तय
और यह सब कुछ हो गया मैं।

सच में
तुमने मुझे कभी नहीं छुआ
तुम्हारे मेरे बीच
कभी कुछ नहीं हुआ।
होता भी कैसे
ऐसे
तुम नहीं तुम
जब मेरे लिए
तब कुछ भी ऐसा
कैसे होता
तुम्हारे मेरे किए।

१९९३

बेचैनी

मेरे खामोश होने से क्या हुआ
खामोशी तो खुद एक बात है
जो बिना बोले
बोलती है
एक बैचेनी है
जो अहर्निश
घोलती है। ◇◇◇ १९९.

आना तुम्हारा !

सब कुछ
लगता है भरा-भरा
पूरा का पूरा हरा-हरा।
शायद तुम आ गये हो ?

◇◇◇ १९९४

विछोह

तुम अचानक
चले गये
मैं अकेला रह गया
फिर ऐसा हुआ
याद का एक दरिया-सा बह गया
मेरा सब कुछ
न कुछ हुआ
जो तुम्हारा था मुझ में
बस, वही शेष रह गया है!

८-८-८ १९९३

मेरी एक बहिन है अन्ना

एक ही पेड़ की दो टहनियाँ न हो भलें हम
वह है
वर्षों वर्ष तक
स्नेह से लिखा गया
मेरे जीवन का एक प्यार पगा पन्ना।

उनका आशीष का उठा हाथ
मन के द्वार पर
निश्छल नेह की
देता है दस्तक।
उनके स्नेह के क्षितिज के समक्ष
सहज ही नत होता है मस्तक।

करती रहती है सेवा
अनवरत
मेरी
और मेरे और की भी
जो मेरे लिये न सही
उनके लिये हैं गैर की भी।

वैसे अन्नपूर्णा भी ठीक है
सही तो यह है
उनका होना चाहिए नाम सेवा
क्योंकि सेवा हुई है धन्य उन्हें पा।

○○○ १९९४

लेखा-जोखा

तुमने
मेरी ओर देखा
जिन्दगी का
हो गया
पूरा का पूरा
लेखा-जोखा।

१९९३

चरम ऐश्वर्य

तुम्हारे होने से हुआ है
सब कुछ।
क्यों हो
और कुछ भी
अब कुछ ?

[illegible] १९९३

उपलब्धि

तुम आये
सब कुछ आ गया
मेरे पास।
अक्षर
शब्द
वाक्य-विन्यास।

सब कुछ तुम

अँधेरे से निकल कर
धरती की बुर्ज पर
आकाश से सटी
जो लालिमा थी
वह तुम्हारे रक्ताभ होंठ थे।
जो फूल-फूल पर
बिखरी थी ओस
वह तुम्हारी मुस्कान थी।
सद्य-स्नात
सुगंध
वह तुम्हारी ही खुशबू थी।
जो गुलाबी शीतल बयार उठी थी
वह तुम्हारा आंचल ही थी।
जो कुछ भी अच्छा लगा
सच्चा लगा
वह तुम्हीं थी।
दरअसल
अच्छा होने का पर्याय हो तुम।
और तुम्हीं से एहसास हुआ
अपनेपन का
जीवन का। ◇◇◇ १९९३

घर

एक पूरा का पूरा है
मेरा घर।
हर कहीं की तरह
यहाँ पीढ़ियाँ दर पीढ़ियाँ
जन्मती हैं
घुटनों चलती हैं
खड़ी होती हैं
बड़ी होती हैं।
हर कहीं की तरह
यहाँ सुबह और शाम होती है
जी जाती हैं तारीखें
हर महीने हलका होता है कलेण्डर।
और यों बीतते हैं
दिन, सप्ताह, महीने, दशक।
घर का भूगोल
सीमाओं की लक्ष्मण रेखा।
इस में कुछ स्वायतता
कुछ हस्तक्षेप
कुछ आक्षेप।
लड़े जाते हैं महाभारत
भीतर ही भीतर।
और कभी-कभी
होते हैं हमले विघटन
कभी समझौते
कभी घुटन।

पुरानों की सुरक्षा
विद्रोह नये का
संताप गये का।
प्रयास जीने का।
यथास्थिति का आतंक
परिवर्तन की आहट
छटपटाहट।
गृह-युद्ध का परिदृश्य
और को स्नेह और प्रेम के
फहरते परचम
और हो जाते तुम, मैं
हम।

[illegible] १९९२

प्रेरणा

जब तुमने मुस्करा कर
मेरी ओर देखा
मुस्कराया सब कुछ
ये टेबल, ये कुर्सी
कलेण्डर
किताबें-कलम
मतलब की सब कुछ।
और मन में कसमसाये शब्द
खुशी की टूटी
सीमा रेखा।
जब तुम ने मुस्करा कर
मेरी ओर देखा ... !

[illegible] १९[illegible]४

सब और एक

सब कुछ
सब में
सब कहीं हो
ऐसा तो नहीं होता।
कोई नयन होते विशाल
उन में लहरते तलैया और ताल।
कोई भंगिमा होती
चितचोर
फैलाती खुशी ठौर-ठौर।
कोई होते रेशमी होंठ
तरल मिठास की कोर।
कोई होती संगमरमरी बाँह
चिलचिलाती धूप में छाँह।
कोई होते हैं वक्ष
अमृत कलश
कोई होते हैं चरण
कमल-से सद्यस्नात
डोलते हिरण।
और नहीं, एक ही सही
इसलिए कहीं
जो है वो भी हो सकता है
नहीं।

१९८४

प्रतिबिंब

साफ दिख रहा है
मुझ में तुम्हारा अक्स
तुम्हारा निर्मल पक्ष।

वही तो है
मुझ में उजला-उजला
बाकी सब
उथला-उथला।

१९८४

जीना

मैं नहीं चाहता
स्वयं को जीऊँ
चाहता हूँ
जीऊँ तुम्हें और तुम्हारे मन को।
तभी जी सकूँगा
हर प्राणी के तन को।
सारे ब्रह्मांड को
कण-कण को
शाश्वत को
क्षण-क्षण को
वनस्पति
और तृण-तृण को
पराये के माध्यम से
अपनेपन को।

[illegible] १९८४

वस्त्र

तुम्हारे वस्त्र
समेटते समय
यों लगता है
कि मैं समेट रही हूँ अपने आपको।
सच कहना
तुम्हें भी ऐसा लगता है क्या ?

[illegible] १९८५

मुहूर्त

जिस दिन ऐसा लगे
कि न तुम्हें
न किसी और को है
मेरी तनिक भी जरूरत
उस दिन सचमुच
समापन हो जाएगा
तब निकल आएगा
मेरे प्रस्थान का
अपने-आप मुहूर्त
पानी में पानी का
विलय हो जाएगा।

[illegible] १९८५

तुम आई तो

तुम आई
तो आये बादल

तुम आई तो
तो आया शतदल

तुम आई
तो नदिया उमड़ी
उच्छल-उच्छल।
तुम आई
उच्छव से पलपल
प्रतिपल
तुम आई
तो लौटा कल
ठहरा आज
आया कल
तुम आई
तो लौटा साहस
पाकर सम्बल।

तुम आई तो
गीतों का बौराया सावन
तुम आई
तो चहका शैशव
बहका यौवन

महका जीवन, चटखा जीवन
कब का जीवन, तब का जीवन, अब का जीवन
मेरा जीवन, उन का जीवन
सब का जीवन।

◇◇◇ १९८५

मैं और तुम

हर बार जब तुम्हें
अपनी बाँहों में घेरता हूँ
तुम्हारे प्यार को टेरता हूँ
पाना चाहता हूँ तुम्हें
पूरा का पूरा अपने लिए।
सब कहता है
मन
हर पल हर क्षण
ठहर जाय ठिठक कर
आ जाय मुझ में सिमट कर
इस के अतिरिक्त
कुछ भी हो किसलिए
ऐसा न हो
तो कोई जिये तो क्यों जिये ?

१९८५

बहुत दिन बाद : १

बहुत दिन बाद
तुम ने मुझे
और मैंने तुम्हें जिया है
इस के पहले तो
केवल कुछ हुआ किया है।
बहुत दिन बाद
लगा है
कि तुम्हारा मेरे लिए
और मेरा तुम्हारे लिए
होना जरूरी है
न कि कोई मजबूरी है।

बहुत दिन बाद लगा है
मेरा बहुत तुम्हारा है
और तुम्हारा मेरा
जिसे दूर किया था
एक ऐसा घेरा
कि हम हमारा ही
न पहिचानते थे चेहरा।

बहुत दिन बाद लगा है
कि मैं और तुम
एक दूसरे के लिए
केवल पुराने नहीं
काफी कुछ नये हैं

जीने लायक बाकी है
कई पल
अंतिम वे ही नहीं हैं
जो पल गये हैं।
बहुत दिन बाद लगा है
कि तुम मेरी हो
और मैं तुम्हारा
तुम ने मुझे बुलाया
मैंने तुम्हें पुकारा।
हम बहती हुई नदी हैं
रहते हैं साथ-साथ
न तुम अलग
न मैं अलग किनारा।

बहुत दिन बाद लगा है
न मैं, मैं हूँ
न तुम, तुम हो
हम दोनों ही हम हैं
यह हमारापन ही
सुरीला सारगम है
और सब कुछ
इस से
हर सूरत में कम है।

१९८५

जीवन-यात्रा

जब मन ने
झाँकना आरम्भ किया था
अपने बाहर
तो किसी ने अनायास
मन में झाँका था
पता नहीं किस तरह
मुझे आँका था।
पर वह आँख मुझे परस गई थी
मुझे पूरा का पूरा सरस गई थी
लगता था सूखी धरती पर
शीतल फुहार बरस गई थी।

पराया हो सकता है अपना
यह पहली बार लगा
मन हुआ विभोर
आह्लाद से पगा
खुशी से भर गई पोर-पोर
इस से अधिक क्या चाहिए था और।

मन के जब पर लगे, फैले
खुले वातायन की
मिली सुवास
दूर-सुदूर आने लगा पास
बनने व टूटने लगे विश्वास
गहराने लगी आस-निरास

जुटने व लुटने लगे दिवास्वप्न
मन में होने लगे प्रवास-दर-प्रवास।

हाँ, किसी ने मुझे पुकारा था
दुलारा था।
शायद सूरज पहली बार उगा था
पहली बार खिले थे फूल
चहकी थी दिशा-दिशा
पहली बार बही थी नदी की धार
पहली बार दिखे थे
पास आते किनारे कूल, दिशा
पहली बार मीठे लगे थे
दिन
शांत और सुखद लगी थी
निशा।

मन का आँगन
कुछ यों फैला था
स्फटिक-सा पारदर्शी
कहीं कुछ भी न मैला था
बस मिल सके एक परस
इसके लिए थी एक
अन-पहिचानी तरस
जो कभी गाती थी
गुनगुनाती थी
तलाशती थी शब्द
मिल जाते थे तो ठीक
अन्यथा मौन हो जाती थी।
अलबत्ता मौन से
होती थी कसमसाहट

मन्द-मन्द आती थी
गीतों की आहट
जब मिल जाते थे शब्द
कसमसाहट का बीज
उग आता था
मैं अलमस्ती में
गाता था
अपने आपको भूल जाता था।

और फिर
एक और सर्ग आया
जब अपने-आपको
अपनी जमीन पर खड़ा पाया।
अपने-आपकी होने लगी तलाश
आत्म-मुग्धता का पलाश
दुर्धर्ष जिन्दगी की दौड़
हर ओर अन्धे मोड़
निर्मम प्रहार
मोह भंग का सांघातिक दौर।
कड़ाके की धूप
न कहीं पेड़
न कहीं छाया
मैं अपनी छाँह से
डर कर ढूँढ़ने लगा साया।
तब भी कोई आया।
कोई बीन रहा था तृण
दे रहा था आमंत्रण।
·ऐसा नहीं है
कि धूप ही धूप हो
छाँह भी होती है

आह भी होती है
अगहन भी होता है
पछाँह भी होती है
एक को दूसरे की
परवाह भी होती है।
न तो दिन है अंतिम
न रात है शाश्वत
सत्य की
कड़वाहट करती हो भले आहत
पर यथार्थ और सत्य
जरूरी नहीं कि करे मर्माहत।
जरूरी यह कि हम
उन्हें साथ-साथ सहें
जो कुछ मन में है
उसे समवेत स्वर में कहें।
डूबना हो तो साथ डूबें
साथ-साथ बहें।
आओ तो सही
देखो तो सही मजा
एक बार साथ-साथ रहें।

तृण ही सही
हमारे ही तो हैं
कमजोर ही सही
सहारे तो हैं
दूर ही सही
किनारे तो हैं
और क्या चाहिए
जरूरी है तो
इतना भर कि

हम हमारे तो हैं।
यह हमारे-पन
का एहसास
तुम और हम पास
तुम्हारा अमृत-परस
यात्रा का अन्तिम पड़ाव
साथ-साथ
चलने को
संकल्पित हम
यह अन्तिम सर्ग है
एक दूसरे को समर्पित हम!

१९८५

बहु आयामी है मेरा प्यार

वह और वह
जब प्यार के हिंडोले में
पेंग भरते थे
एक दूसरे के लिए
जीते थे
एक दूसरे पर मरते थे।
मैंने उन दोनों को ही प्यार किया।
ऐसा ही हुआ फिर-फिर
जब उसने
और उसने और उसने
अपने-अपने मन को हार दिया।
वह जब गली और मैदानों में
लगाते थे समवेत स्वर में नारे
एक हों दुनिया के
मजदूर सारे।
जो जानते थे
न मिलेंगे तख्त और ताज
उन पर गिरेगी गाज
कहर ढायेगा राज।
मैंने इन को भी प्यार किया।

वह जो
रचता था
शब्दों की अल्पना
अनोखी कल्पना

सत्य के नये रूप, नये ढंग
जिसके अलग-अलग रंग
बजा जाता था
जीवन का चंग।
मैंने उसे भी प्यार किया।

नहीं व्यापार या विज्ञापन
जिस में भोगे आदमी आदमी को
उस सपने को प्यार किया मैंने
थोड़ा ही सही पर
इस सपने को जिया मैंने।
और हाँ तुम से भी
जो मेरी तपिश पर
अमृत-सी बरसती हो
मेरी रग-रग में
मेरे रंध्र-रंध्र में सरसती हो
मैं न तरसूँ इसलिए तरसती हो।
मैं कहीं पंगु न रह पाऊँ
जमीन में गड़ा न रह जाऊँ
उड़ूँ और वातायान में फैलूँ
जितना हो सकता हूँ
उतना हो लूँ
इसलिए घनघोर घटा की
तरह उड़ती हो, बरसती हो।
बहु आयामी है मेरा प्यार ?

१९८५

बहुत दिनो बाद : २

बहुत दिन बाद
मैंने छुआ है पवन को
सूरज की किरण को।
बहुत दिनो बाद
देखा है पेड़ को झूमते
आकाश को चूमते।

बहुत दिनो बाद
परसा है
बादल की हँसी से छिटके जल को
सुना है
बरसात की नदी के कल-कल को।

बहुत दिनो बाद
हरी दूब आई है मेरे पास
फूल खिले हैं
जूही और पलाश।

ऐसा तो नहीं है कि यह इसलिए
हुआ हो कि
बहुत दिनो बाद
तुम ने मुझे देखा
मैंने तुम्हें
तुम मुझ में खिली
मैं तुम में।

बहुत दिनो बाद
यों हुई
होने की प्रतीति
जीने की परिणति।

○○○ १९८५

एक बार फिर : २

एक बार फिर
आ रहा है
एक फूल
मेरे आँगन में
आकाश को
धरती को
गोया सारे वातायन को
सुवासित करने।

एक बार फिर आ रही है
मेरे आँगन में
एक मुस्कान
उदास को
श्लथ श्वास को
सुहास से भरने।

एक बार फिर
आ रही है मेरे आँगन में
एक किलक
क्षितिज को
.ऊषा को
निशा को
माधुर्य से भरने।

एक बार फिर आ रहा है
मेरे आँगन में

एक विश्वास
मन को
तन को
जीवन को
जीने की आस से भरने।

एक बार फिर उग रहा है साहस
आँगन में
अँधेरे को
घेरे को
मेरे को
भवितव्य को
अपने आप में समाहित करने।

एक बार फिर
उग रहा है सूरज
मेरे आँगन में
कोने को
खोने को
होने को
एक दृष्टि से
दिशागत करने।

एक बार फिर
उग रहा है भविष्य
मेरे आँगन में
आगत को
अनागत को
रूप को
अरूप को
आज को

साज को
अमृत्व को
ममत्व से भरने!

एक बार फिर
उग रहा हूँ
मैं खुद
मेरे आँगन में
बीते को
रीते को
अनचीते को
जीने के नये बोध से
अर्थायित करने।

[illegible] १९८६

नई पीढ़ी

एक नये संसार में
आने पर
घबरा कर
माँ से चिपटती है
नई पीढ़ी
और माँ अपनी देह से
काट कर उसे अलग करती है।

घुटनों के बल
गिरते-पडते
चलती है नई पीढ़ी।
और हर जाने वाली पीढी
सोचती है
हाय! यह कैसे चलेगी ?
हमारा विकल्प क्या है ?
हाय! हमारे बाद क्या होगा ?
और नई पीढ़ी चलती है
फिर घुटनों के बल
गिरते-पड़ते खड़ी होती है
जाने वाली पीढ़ी से
कहीं बड़ी होती है!

१९८६

नशीले नयन

नशीले नयन
गुलाबी अधर
पगाया हुआ-सा
बहका पवन।
फूटे कमल
ढुल गये कलश
गुलाबी चरण।
गुलाबों ने
कर लिये वरण
ऊषा और पवन।
ऊषा ने ले लिए किस कदर ?
अमिय और गुलाब
और हम भी
तुम्हारी शरण।

१९८२

जन्मी-अजन्मी पीढ़ी

हम दोनों भले
यहाँ हैं
पर अभी तुम लोग हो जहाँ
यहाँ है।
मनु, अनु, रेखा-शिल्पा, शलज, प्राशी
सुधि, ऋतु
राजीव, नरेन्द्र
अशीथ, अनिल, अनिशा, मेघा
और अजन्मी पीढ़ियाँ
तुम सब
जो अनायास हमारे हुए
उसी तरह हमारे दुलारे हुए।

सोचते हैं हम
तुम्हारे लिए
जितना भी किया
या किया जा सकता है
वह सब होगा कम।
आक्रोश और गुस्सा
इस में हम सब का हिस्सा
यह तो रोज-रोज का है किस्सा।

तुम्हारे द्वारा
हमने आने वाली
पीढ़ियों को जाना है

उन्हें अपना माना है
न्याय-अन्याय
दिया-अनदिया
पूरा हो सकता है
किसी का किया ?
इतना क्या नही
सार्थक
कि जितना दे सके हैं
उतना तुम्हें दिया है
तुम्हारे माध्यम से
हमने भविष्य को वर्तमान में
जिया है
और भी जिएँगे हम
ज्यादा या कम !

१९८७

आने वाली पीढ़ी की यातना

मेरा पोता
बात करता है
गोली की, तलवार की
सिर या सीने पर
प्रहार की।
बोलता है ठाँय-ठाँय
अब कहाँ जायँ, किधर जायँ?
बात करता है हत्या की
अपराध की
या फिर 'स्पाइडर मैन' की
जो आँख से
जलाता है
आदमी को।

ये मेरा पोता
दूर दर्शन के
राम की संतान है
और तो और
खुद रावण तक
हैरान है
कि कौन है इंसान
और कौन हैवान है?

१९८७

पेड

पेड़
अंगद के पाँव की तरह हैं अडिग
बल्कि उस से भी अधिक
कि खुद चाहें तब भी
अडिग रहेंगे
इसलिए डर कर
माँ-धरती की कोख से
निकल पर कटे नहीं।

आज भी गहरे धरती में समाए
माँ से चिपटे हैं
इसीलिए तो
उस राब जहर को निगलना
इन की साधना है
प्राणी-मात्र को
बचाने की कामना है।
पर हिंसक हमलांवर की
कुछ और ही दुर्भावना है
वह निपट खूँखार हृदयहीन
असंवेदना से संपृक्त है
इसीलिए
अब
इन गाछ-बिरछों की
शिराएँ और फेफड़े
इतने जर्जर हैं

कि मंद होने लगा है
इनका मर्मर संगीत
बंद होने लगा है
अमृत का स्रोत
वे जिंदा हैं
इसीलिए कि मरे नहीं हैं
हमलावर के रीते भंडार
अभी भरे नहीं हैं!

◇◇◇ १९८५

पर्वत और पेड

ये पर्वत!
और पर्वत को तोड़
पर्वत पर खड़े हुए पेड
पर्वत पर अंगद से पाँव गाड
जड़े हुए पेड़।

पर्वत से निकले
मगर
पर्वत से कहीं अधिक बड़े हुए पेड़
जीवन-से विकासमान बढ़े हुए पेड
गगन में गर्व से
सर उठा
पवन के परवान पर चढ़े हुए पेड़
आकाश के तने
स्फटिक पटल में
रंग से भरे चित्रवत् मढ़े हुए पेड़
क्षितिज के वितान पर
क्रोशिए से
कढे हुए पेड।

भीड़ की
घुटन छोड़
विजन को भगे हुए पेड़!

वातास की
समीर की

सुगंध से पगे हुए पेड़
रहे भले पहाड़ पर
आकाश के मगर
सदा-सर्वदा सगे हुए पेड़।

○○○ १९८६

पर्वत और मेघ

यह क्या हुआ ?

अभी अभी
कुछ क्षण पहिले
जो गर्वीले पर्वत थे
साँझ के धुँधलके में
काले घने मेघ हो गये !
दिन भर जले थे
रात के गले में
बाँह डाल सो गये !

[illegible] १९८६

बादल, पर्वत और तुम

उधर बादल
पर्वत को चूम गये
पेड़ पेड़
पत्ती-पत्ती
झूम गये
हवा में
आकाश में
प्यार के चक्रवात
घूम गये।

चुम्बन का
अमृत
छू गया मुझे भी
पर्वत की नजर से
मैंने देखा तुझे भी!

[illegible] १९८५

हरा सपना

मेरे और सूरज के बीच
आ गये हैं पेड़
कतार के कतार
ढेर सारे
हजार हजार।

कभी पेड़ों से झाँकती धूप
कभी विहँसती
हरियाली का रूप।

नहा जाती है आँखें
नाचती लरजती शाखें
बन जाती हैं
जीवंत उड़ती पाँखें।

फ्रेंकफर्ट से बर्लिन जाते समय २ अक्टूबर, १९८५

परिदृश्य

मेरे सहन की खिड़की
के बाहर
कुछ गहराई तक
साहस के साथ खड़ी है हरियाली
सुकरात से आगे
मीराँ से भी आगे
क्योंकि यह जहर पीकर जिन्दा है
और वह भी एक बार नहीं
बार-बार।

यह जो सड़क है
इस के चारों तरफ
उगलती जहर
हर पल जी भर।
ये जो हवा दूर से
आती है
न जाने
अपने आँचल में
क्या-क्या न समेटे हुए!
उसे उलीच कर
चली जाती है आगे।

ये जो पानी
इधर-उधर से
आता है

बड़ा विशाल हृदय है जिसका
जिस में सब कुछ
समाता है।
इसे पूरा का पूरा
खींच ले जाता है।

इस सड़क
इस हवा
और इस पानी
के होते भी
ये रह जाती है
कमल की मानिन्द
इस सब के बीच।

और अनायास
लगता है कि
हरियाली के साथ
जो घटता है खिड़की के बाहर
वह मुझ पर घटता है
इस खिड़की के भीतर !

१९८७

सावन

बूँद-बूँद झरने लगी है हवा
मेह आँधी की तरह चल गया है
सब हो गया है उलट-पुलट।
जब मौसम ने बदले तेवर
तो सब कुछ बदल गया है!

१९८६

बादल

ॐ

गगन के पटल पर
शिखर ने लिखे हैं
हरे गीत जी भर।
घटा हो गई
उर्वरा अचानक
बढ़ गये शिखर-दर-शिखर!
सारा वातावरण
किस कदर आया निखर।
फैल गया सौंदर्य
कण-कण में बिखर-बिखर!

१९८६

बरसात के पहले

पेड़ों की बाँह में बाँह डाल
लिपट कर सोई है हवा
चुपचाप।
बादल के आलिंगन में
सिमटी बिजुरिया
विह्वल है, प्रेमातुर है
फिर तो बरसेगी बरखा
निश्चित बरसेगी
आप ही आप !

[illegible] १९८६

वर्षा

धरती पर
क्षितिज ने
गाड़ दी
आकाश की पताका
हवा ने फहराया
समुद्र ने
उछाल दिये
बादल के
गुब्बारे
ढेरों-ढेर सारे।
खुद
समुंदर
आकाश में
लहराया
घटा-सा गहराया
आकाश के
टूट गये तार
भीग गई पताका
गमक उठा संसार।

ओस

बाहर फूलों पर
अल्ल सवेरे
सो रही है ओस।
सर्वत्र उल्लास
और परितोष।
बयार झुला रही है झूला।
इस के स्पर्श से
फूल फूल फूला।
मुस्कराई है बयार
मुस्कराया है सब कुछ
निश्चय ही होगा
अच्छा ही अब कुछ!

[illegible] १९८६

शोर-ही-शोर

ये शोर
इधर-उधर से उठ कर
चारों तरफ से जुट कर
आकाश की अलगनी पर लटक गया है
सूरज रास्ता भटक गया है
प्रकाश का दम घुटने लगा है
हवा का श्वास लुटने लगा है।

पेड़ घटते जा रहे हैं
बादल फटते जा रहे हैं।

धूल के बगूले
दीठ को लील रहे हैं
जाने-माने असुर
धरती को कील रहे हैं।

शब्द अर्थ संप्रेषण
कहीं दूर ही दूर चले गये।
हम सब के सब
इस बेमानी शोर से छले गए।

दुर्घटना

वर्षों पूर्व
एक दुर्घटना घटी।

वर्षों के ऊँचे
पर्वत से
किसी ने एक
पत्थर को लुढ़काया
पत्थर भी ऐसा गिरा ज्यों दिल की
धड़कन थी
गतिमान होने के भ्रम से ग्रसित
लुढ़कना
अब तक जारी है।

परिक्रमा

थक जाती है सुबह
शाम होते-होते
लगता है जीवन
तमाम होते-होते
हर शाम जी उठती है रात
निष्काम होते-होते।

[illegible] १९९१

पानी और मन

खुले बहते पानी में
गति भी है, धार भी है
उन्मुक्त विस्तार भी है।

वर्तमान से वंचित भूत और भावी का
सतत निस्तार भी है
प्रवाह का प्रतिकार भी है।
और सबसे बडी बात
उसके एक मन भी है
जो कंकर का भी
स्वागत करता है
मुस्करा कर
हवा का अकिंचन स्पर्श पाकर
वह उद्वेलित होता है।

पर नल के पानी की तो
प्रतिबंधित नियति है
नियंत्रित गति है
जकड़ा हुआ प्रवाह है
यांत्रिक उच्छ्वास है
नल का पानी तो
समय का आज्ञाकारी दास है।

१९९०

आकाश-बीज

आकाश को
अपनी मुट्ठी में भर कर
इधर-उधर
सर्वत्र छाँट दूँ।
फिर उगे आकाश ही आकाश!
तब, हाँ तब
हर बढ़े हुए हाथ में
उसे पूरा का पूरा
बाँट दूँ।

१९९५

विभ्रम

एक दुर्धर्ष रात
फिर आई है
जिस पर कोहरे की
मोटी परत छाई है।
जो हमने जलाई थी मशाल
हतप्रभ-सी खड़ी है
अभी तो रात
सचमुच
बहुत बड़ी है
बुझते अंगारों की
आखिर लड़ी है।

स्वप्न

अपने स्वप्न
खुद ही भोगने पड़ते हैं
उन्हें गलत ही गढ़ा हो अगर
तो क्या किया जा सकता है ?
उन्हें तो महज जिया जा सकता है।

[illegible] १९९०

नियति : २

आज प्रात:काल
मेरे कमरे का कलेण्डर
हरहरा कर उड़ा
और सर के बल नीचे पड़ा
पिंजरे के पंख-कटे पंछी ने
जैसे उड़ान भरी हो !

१९९३

भवानी दादा

कहाँ तुम
और कहाँ हम ?
तुम्हारी सोच और समझ
हम से बिल्कुल भिन्न
पर कहाँ करती है तुम्हें
हम से खिन्न।
तुम्हारा स्नेह-सिक्त परस
विरचता जाता है
शांत स्निग्ध हर्ष।
तुम्हारी सीधी सपाट बयानी
उस की अनोखी रवानी
उस की चिर-जवानी
गंगा की तरह बहती है
अजस्र अशेष
छू जाती है तट
तट पर जो कुछ हो
उस सब को
दे जाती है एक नया परिवेश
नई भंगिमा
सब के लिए मन में क्लेश।

मुझे भी छुआ है तुम्हारे शब्दों ने
दिया है अकृत्रिम स्वर
तुम्हारी कालजयी स्फूर्ति ने
मुझे दिया है नेह से भर।

काश ! जैसे तुम
हो सकते हम
अजर-अमर ?

◇◇◇ १९८८

माँ : १

उम्र की ढलान पर
ऊपर चढ़ते
तुम बहुत याद आ रही हो माँ!

ज्यों-ज्यों उलझती है साँस
यूँ लगता है
तुम होती तो
निश्चय अपनी साँस मुझे देती।

ज्यों-ज्यों थकती है आँख
यूँ लगता है
तुम होती तो
अपनी ममता का काजल
अवश्य ही आँज देती
शायद अपनी आँख ही देती।

ज्यों-ज्यों थकते हैं पाँव
यूँ लगता है
तुम होती तो
दुलराती
शायद ललकारती।
आखिर उन्हें तुम्हीं ने तो
उँगली थाम कर चलाया था
तुम्हीं ने आकाश की तरह
मुझे उठाया था

हवा में बड़ा किया था
धरती पर खड़ा किया था।

अब जब काँपने लगे हैं पाँव
बंद हो रही है आँख
फिर नहीं आओगी ?
सचमुच माँ
लौट आया बचपन
जवानी से थक कर।
आना तो तुम्हें अभी चाहिए
मेरे श्रान्त नयनों को
तुम्हारी आँख चाहिए
मेरे अलसाये पाँवों को
तुम्हारी पाँख चाहिए।

[illegible] १९८८

माँ : २

पता नहीं
वह छोटी-सी देह
कैसे समा लेती थी
अथाह सागर जितना नेह ?

एक घने बरगद का
पेड़ थी मेरी माँ
जिस में न केवल
खुद के जाये जन्मे
फूले फले थे
और भी बहुतेरे पले थे।

उस पर बने
न जाने कितने नीड़
पक्षियों की जिस पर
रहती थी भीड़।

उन सब का
कलरव
आक्रोश था
उसके जीवन का हिस्सा
वह चुपचाप
शांत, धीर-अधीर
सभी का सुनती थी किस्सा।

हम उस के प्यार से
अनभिज्ञ
विवाद करते थे
वह भी
बस मुस्कराती थी
उस के मुँह पर
प्यार की हँसी
कब जा पाती थी !

१९८८

धर्म-माँ

तुम मेरी माँ हो
इसीलिए कि
अपना एक अंश
अपने जिगर का टुकड़ा
मुझे दिया।
जिस से मैंने
अपना जीवन जिया।

इतना ही नहीं
तुम ने मुझे अपने बेटों से
अधिक माना
मनचाहा प्यार किया।
जो कुछ तुम्हारा अपना था
मुझ पर वार दिया।
देना तुम्हारा पर्याय है
लेना मेरा अपरिहार्य है।
तुम निरंतर देती रही अपार
और मैं लेता रहा हाथ पसार।

पिता

बीज से बने पेड़
हमारे पिता
लगे रहे
हमारी बगिया की
बचा लेने मेड़।
मेड में बरो हम
सोचते थे
कि काम की भीड़ में
वे हमें जानते भी हैं ?
हमें पहिचानते भी हैं ?

अपराध-बोध का
कसैलापन
उन्हें कर देता था व्यग्र
और वे झोंक देते थे
काम में
अपने-आपको समग्र।

या फिर बनाते थे भवन
जो हमारे लिये होते थे चमन।

शंकर की नाई
हमारे बापू भी भोले थे
पर लोग-बाग तो
गजब के गोले थे
तभी तो ठगे गये बार-बार

अपनों से
परायों से
किस्मत से।

ऐसी थी उनकी पहिचान
सादा था उनका परिधान
ऐसा ही था उनका तौर
वे वाकई थे कुछ और।

<><><> १९८

कान्ति : एक अनुभूति

जब से मैं हुआ था मैं
सुनता आ रहा हूँ
दिल के आईने में है
तस्वीर यार की
जब चाहा गर्दन झुकाई देख ली
एक मुहावरा भर लगा था
बहुत मुहावरों में से एक।
तभी अचानक
कोई न जाने कहाँ से आ गया
समझ पाता सच
उसके पहले ही आ गया
मन में बैठ गया सहसा
समा गया।
अच्छा लगा
सच्चा लगा।
लगा सही था
जिसका इंतज़ार था
वह एक देह नहीं
पूरा का पूरा प्यार था।

ऐसा कौशल भरा
बस गया रग-रग में
सारे अंग-अंग में;
ऐसा नहीं लगा
कि बाहर से आया हो।

लगा कुछ ऐसा
जैसे कि
प्रकट हुआ वह
और कहीं से नहीं
सदा-सदा से मन ही में समाया है
जो मन में सुप्त पड़ा था
अचानक उग आया हो।
उतना ही सहज
जैसे आँखों से दिखना
धमनियों में रक्त का प्रवाह
मन में गूँजना
श्वास-प्रश्वास की रफ्तार
और हाथ का लिखना।

क्रान्ति नाम है सहज का
नाम है सहज का
जिसे नाम दिया गया है
केवल पुकारने को।
अन्यथा वह एक नाम नहीं है
वह है एक अनुभूति
अनाहूत की।
एक अनहद नाद
जो ब्रह्मांड में समाया हो
एक अपूर्व गीत
जिसे मेरे अन्तस् में
किसी ने चुपके से गाया हो।

मित्र

मित्र
एक चित्र
जो मन अपने हाथ से
सहज ही खींच गया।
जो अन्तरतम से उठ कर
समूचे मानस को सींच गया।

मित्र
एक चित्र
जो मन में अपने आपको
आप ही रच गया।
उसके होने से
हुआ कुछ यों
मेरा भीतर, मेरा बाहर
मुझे पूरी तरह जँच गया।

बढ़ते हुए गम

होते होते
मित्र तो हो गये हैं कमोवेश कम
कुछ हुआ है ऐसा
कि बढते-बढते
बढ़ गये है गम।

सूरज के होते हुए अँधेरे का गम
जुगनुओं की चमक
जो मुश्किल से हाथ लगी
उसके बिखरने का गम।
शाम को लौटते
खाली हाथों का गम।
खाली पेट
चकराते हुए
माथों का गम।

हरी-भरी वादी से
बियाबान जंगल में
पहुँचने पर
छूटते हुए
साथों का गम।
जिन्हें सँजोया था
मन का खून देकर
टूटते हुए सपनों की
रातों का गम।

जो जगाती थी
विश्वास हर मन में
उन झूठी पड़ती हुई
बातों का गम।

जिनके भरोसे पर
चले थे राहों में
उनके खेमे में पहुँचते ही
अंतरघातों का गम।

होते-होते खुशियाँ
तो हो गई कम।
बढ़ते-बढ़ते अपार
हो गये हैं गम।

सुदर्शन

सुदर्शन
अलभ्य तुम्हारा दर्शन।
मौन रचेता
एक चुनौती
उसको
जो हमारे जीने की
एक लीक, एक पद्धति.

विजय किया है
तुमने
उस सब को
जिस से हम हारे हैं
मदान्ध होड़!
अनबुझी दाह!
उन्मादी पिपासा
जिस में न कुछ होते हुए
आदमी रह जाता है
प्यासा ही प्यासा।

तुमने तथागत की तरह
उनकी मानिन्द
हमें भी छोड़ दिया है
जिन्दगी को एक
नया मोड़ दिया है!

पुष्पू

मेरे मित्र पुष्पू
तुम हो एक खुशबू
जो हर समय
ये जो है न मलय
लाता है मेरे पास
सुगंधित हो जाता है
मेरा सब कुछ
अनायास !

१९९१

कोमल

किसने दिया
यह नाम तुम्हें ?
अवश्य ही था भविष्य वेत्ता
पढ़ ली थी उसने
हस्त रेखा।
तूफान के बीच रह कर
समुद्र से शान्त
तुम प्रशान्त।
आँधी के बीच
अविचलित
तूफान को सहे जाते हो
जिस को जो चाहिए
इधर से उधर से, सत्यों को
बटोर, अन्वेषी तुम
जिस का जो प्राप्य है
उसे वही भेजते हो।
दीप की तरह
प्रकाश ही नहीं फैलाते
अगणित दीप जलाते हो
प्रकाश से प्रकाश जोड़ कर
अंध तिमिर को
दिव्य बनाते हो।

१९९१

बिज्जी

यों तो सभी कुछ
जो कथ्य
सही है वह खरा है
आस-पास ही घटता है
हर आदमी जीने के लिए
निरंतर खटता है।
पर इस घटने
और खटने को
कोई तो कर सकता है
नजर-अन्दाज
कोई उसे अपने
आप में घटा लेता है
तो मन की अन्तर वीणा के
बज उठते हैं साज।
इसके लिए चाहिए
एक उपजाऊ मन
एक दृष्टि
जिसके भीतर
समा जाय
सारी की सारी सृष्टि।
बिज्जी तुम ऐसे ही
एक दृष्टा हो
अपने आस-पास को समेट कर
दृश्य को रच कर
सत्य को घड़ने वाले

सृष्टा हो।
और एक बात है
कि तुम
छड़ी के
एक सिरे पर खड़े
एक मित्र हो बड़े
चाहे छड़ी के दूसरी ओर
कोई तैयार है घात को
कि मौका लगे तो
तुम्हारी ही छड़ी से
तुम से लड़े।
तुम्हारा मन रामुद्र है
उस में तुफान-सा अतिरेक है
अतिरेक कब तक चला है!
इसलिए
तुम्हारे विश्वारा ने
तुम्हें अधिकतर छ्ला है
पर उस में जितना
तुम्हारा मन जला है
तुम्हारा कथ्य
उतना ही उजला है।
तुम्हारे उजले केशों
और दांतों की तरह।
तुम सचमुच बहुत ही सहज हो
और कुछ हो न हो
आदमी महज हो ?

१९५१

मुस्कान व बन्दूक

'प्राशी' और 'अन्वी'
मुस्कानों की जाह्नवी
कोई कोशिश में है
मुस्कानों को थमा दे बन्दूक
और सन्दूक।
गोया आतंक व भय
प्रलोभन और संचय।

१९९३

नये राम

एक घोषित गर्भ-गृह
जिस में न कोई जन्मा
न जन्मता है
न कोई रहता है
सत्ता के राजपथ की
धूल से उठा है।

मिटा रहा है
न जाने कितने
मासूम गर्भ
कर रहा है ध्वस्त
भूख-प्यास से पस्त
जाने कितने गृह।

भूख नहीं
मिटेगा भूखा भर।
बनेंगे नहीं, टूटेंगे परिवार, घर!
मठ मन्दिर मस्जिद गुरुद्वारों में
न कुछ कर सकने वाले
बजाते रहेंगे
घंटियाँ भ्रम की
और करेंगे राज
सब कुछ कर सकने वालों पर
अपनी चिलम भरेंगे
औरों के श्रम से जुटाए गये

अक्षत चन्दन से होंगे महिमा मण्डित
महलों को देंगे आशीष
क्योंकि महल तो ढहते नहीं
होते हैं शाश्वत।
झोंपड़-पट्टी ही होती है खण्डित
और इनका सरोकार तो है शाश्वत से
भूख गरीबी अशिक्षा
से क्या होता है
अस्मिता का ?

मंदिर में एक नन्हा-सा अर्घ
देने से वंचित
राम के द्वार पर खड़ा है
शम्बूक
वहाँ ही खड़ा रहेगा
इसी तरह से
झूठे पत्तल-दोनों पर
टूट कर पड़ेगा।
सिर पर उठाये पीढी-दर-पीढी त्याज्य
या कभी आक्रोश में छोड़ जायेगा धर्म।

झूठे अभियोग से शापित
सीता जलती रहेगी
अहिल्या बनती रहेगी शिला
जीता रहेगा भूख व अज्ञान इसी तरह
और धर्म-वाहिनी चलती रहेगी
राजपथ पर अबाध
और आरोहण करेगी सत्ता पर
सभी सुख भोगेगी।

शम्बूक तीर का शिकार भले ही न हो

पर खड़ा रहेगा सत्ता से दूर
सदा की तरह
प्रसन्न होता रहेगा
राजा द्वारा उस के झूठे बेर खाने की कृपा से।
भूख नहीं
अक्षत-चन्दन ही सत्य है
ज्ञान का 'राम नाम सत्त' है।
दूर-दूर तने आलीशान शामियाने
या फिर भव्य भवनों में
अखंड सुंदर काण्ड
या कभी राम कथा
खुमानी, हिटलर, गोयल्स
रूप बदलकर अवतरित हुए हैं
'यदा यदा ही धर्मस्य ग्लानिर भवति भारत'
जन्म लेते हैं हर बार
यही अवतार।
और हर बार ढूँढ़े जाते हैं नये यहूदी
और झोंके जाते हैं
बम्बई, सूरत, अहमदाबाद
भिवण्डी व भागलपुर की
भट्टी में।

जिन्ना भी जन्मते हैं फिर-फिर
बाँटने को देश
अपने उन दोस्तों की तरह
जिन्होंने देशों को बाँटा ही नहीं
निगल लिया।

तुष्टीकरण के झूठ से
तुष्टीकरण करती

तुष्ट होती है सत्ता की प्यास।

कभी गौ-हत्या
कभी गंगाजली
कभी राम
सभी सत्ता की राह के मील के पत्थर
पहुँचने के बाद
खड़े रहेंगे निःस्वर।

गाय अभी कटती है
गंगा अभी भी मैली है
जब सत्ता न मिली
गाय से गंगा रो
तो गाय खाती रहे कूड़ा करकट
गंगा होती जाय और भी मैली
उस से कहीं
कुछ नहीं बिगड़ता अस्मिता का।
अस्मिता तो वह जो लादे सत्ता
राजभोग का सुख अलबत्ता।

दूर दराज से आया हुआ
जब चलाता था राज
तब अस्मिता थी चुप
अस्मिता का तड़पता वीर
तब आराम की नींद सोता था।

अब जब महल बनते हैं जेल
संगीनों के पहरे में
पुष्पक विमान में उड़ कर
ध्वज फहराने का खेल।

अस्मिता इन्हीं दिनों जाग उठी है
गर्भ से गृह पाने
अपना महल जैसा घर बनाने
किसी मजलूम के लहू से दिये जलाने
किसी असहाय के शव पर
अपनी विजय का परचम फहराने।
अस्मिता का न तो भूख से
न गरीबी से कोई वास्ता
अस्मिता तो एक रास्ता
झूठे बेर खिलाकर भीलनी
तुष्ट रहे
सरयू पर रहता रह केवट
और मरकर धन्य हो जटायु
भील केवट जटायु शम्बूक बना रहे
धूल मिट्टी से सना रहे
और इन नये 'रामों'
का राज्य
यों ही बना रहे।

[illegible] १९९२

अबकी बार

अहिल्या की तरह
शाप से शापित
वज्र शिला-सा मैं
प्रतीक्षित हूँ
कोई राम आये।
फिर धड़के दिल
फिर इल्जाम आये।
अबकी बार मैं नहीं
स्वयं शाप हो जायेगा
जड़-विहीन जड़।

१९९२

अस्मिता

उछाला जाएगा
हर वक्ष में
रोष।
गूँजेगी
हर कक्ष में
सौगन्ध
किसी के विरुद्ध
तो किसी के पक्ष में।
वैभव सज्जित
पाँडालों से
होंगे उद्घोष।

अस्मिता के नाम पर
तैयारी
अस्मत लूटने की।
पर विवाह की बेदी पर
दाँव पर लगेगी
पाचाली-दर-पांचाली
न केवल होगी निर्वसना
जलेगी भी।

इनको शपथ न दिलाएगी अस्मिता
और उस समय भी
अस्मिता का साधक चुप था
जब अँधेरा घुप था

छिड़ा था महाभारत—
परतन्त्रता के कौरव से
लड़ रहा था मुक्ति का पाण्डव
उठा हुआ था गाण्डीव
अपनी धरती पाने के लिए
मुक्ति का सेवरा लाने के लिए।

अजब है अस्मिता
चुप रहती है जब मुँह खोलना चाहिए
बोलती है जब न बोलना चाहिए।
जब ललचाए सत्ता
तब अलबत्ता
सहसा जाग उठती है
मुँह से घृणा की आग उठती है
उठती है सौगन्ध की पताका
उठाई जाती है शलाखा
तुष्टीकरण की।
तुष्टीकरण को देता हुआ गाली
तुष्टी करेगा
अन्याय की पुष्टि करेगा।

अन्यथा जो घटता है
भूख प्यास
और संत्रास
आस-पास
उस पर नहीं जागेगा आक्रोश
यह रहेगा समाधिस्थ
खामोश।

[illegible] १९९२

धर्म

धर्म
एक चाँद तारों विहीन
नागिन काली रात
जो डस गई है सब कुछ
ज्ञान, विवेक
यहाँ तक कि रामझ
यानी
जिस से
होता है आदमी आदमी कुछ-कुछ।

बस कोल्हू का एक बैल
अज्ञान की पट्टी बाँध
पेलता है आदमियत का।

जीता खिंची रेखाओं की
नियति को।
जन्म की दुर्घटना को अन्तिम
सत्य मानकर
अज्ञान को कर्म जानकर।

भक्ति की रति में विस्मृत
ज्ञान को करता है तिरस्कृत।
एक अन्यायी वचन को पूर्णा
मानता है मर्यादा।
नारी की अग्नि-परीक्षा के
अन्याय को

करता समादृत।

द्यूत में नारी की नीलामी
और होना निर्वसना
लूटना लाज
फिर भी धर्मराज।
तब से
यह सिलसिला
मुसलसिल चला है
अब भी चल रहा है लगातार
शोषण, अन्याय, अत्याचार।
हत्या, हत्या।
हत्या निहत्थों की
निर्दोष की
प्रचण्ड अग्नि
झूठे प्रतिशोध की।
मंदिर, मस्जिद, गुरुद्वारे, गिरजाघर
यात्राएँ
उपवास
उपवास के बाद उत्सव अन्नकूट
दूसरी ओर लूट ही लूट
भूख को खुली छूट।
भूख कहीं बोल न जाय
अपनी शक्ति को तोल न जाय
और तोलकर खोल न जाय।
भूख की क्षुधा से
जल न जाय शोषण की सृष्टि
भूख को मिल न जाय दृष्टि।
इसलिए
ये भव्य आयोजन

भजन-कीर्तन
शोषण के रक्त से रक्तिम दान।
अपरिग्रह के उद्घोष की नींव पर
ये भव्य भवन।
भूख के बीच यज्ञ-आयोजन
नेताओं के जमघट
सत्ता का संयोजन।
मेरे धर्म निरपेक्ष देश
का परिप्रेक्ष्य
सुनता है वेद गीत
काले धन से बने
भव्य-भवनों में
जिनका स्वर अक्षुण्ण जीता।

पनपता है
स्वर्ण से सिंचित
औरों को रोटी रो कर वंचित।
मेरा धर्म निरपेक्ष देश
उसके इतने रूप भेद।
अपरिग्रह
वातानुकूलित बसों में यात्राएँ
महलों में निवास
त्याग तप की सुवास।
मेरा धर्म निरपेक्ष देश
सुनता है बाइबल
जो सुनी जाती है
नाभकीय शस्त्रों के स्वर में
एलेन्द, लुमुम्बा की हत्या में।

धर्म

जब से जन्मा है
देता रहा है सत्ता को
अपना सशक्त कंधा
आदमी के विवेक को
करता रहा है
कुंद और अंधा।
चलाता रहा है शमशीर
फिर भी
मेरे धर्म निरपेक्ष देश में
हर मौत पर
एक ओर
आयत, भजन, अरदास, नवकार, मास
और फिर वही रक्त-रंजन
मौत-दर-मौत
भूख-दर-भूख।

आखिर धर्म की भूख
कितनी है
कब तक धर्म का ताण्डव-नृत्य
धर्म निरपेक्ष देश में
छद्म वेश में
हमें छलता रहेगा ?
क्या यह सिलसिला
यों ही चलता रहेगा ? [illegible] १९९०

धर्म बनाम दर्शन

धर्म और दर्शन
एक नासमझी
दूसरा खोज
एक पुनरावृत्ति रोज-रोज।
दूसरे में प्रश्न की व्यग्रता और सोच
एक मात्र नियति का स्वीकरण
दूसरा विद्रोह
जो तोड़ता नियति का वशीकरण।

एक शस्त्र है शोषण का
जो है उस के पोषण का।
दूसरा खोलता है रहस्य
सत्य की परत दर परत
जो झूठ है उसे करता अपदस्थ
पर धर्म ने उसी को किया स्वागत।

धर्म ने क्या नहीं किया
सत्ता की
दुरभिसन्धि को
छल-कपट को
सहजता से
बेशर्मी से जिया
वैभव की पताका
हाथ में उठाये

क्या-क्या
सितम इस ने नहीं ढाये।
घृणा को सुहाने
परिधान पहिना कर
बना रूपवान
मनुष्य को
बनाया नरभक्षी
जुल्म को इसी ने
औचित्य की
सुंदर सुहानी देह बक्शी।
विवेक की
भ्रूण हत्या
एक खास
समझ के साथ।

अनवरत लगातार
इसने किया
मनुष्यता को क्षार-क्षार
ये भव्य-भवन
स्फटिक
आदमी से भी अधिक स्वच्छ
वे विशाल आयोजन
रोज वैभव का ताण्डव नृत्य
किसने किये ये नियोजन ?
जिसका न कहीं ओर न कहीं छोर
पर आदमी का
न कोई ठिकाना
न ठौर
दीप
जो उस से कहीं दूर है

उसे करता प्रकाशित
और उसे करता
अंधकार से शापित
जो उसकी शरण
मौत का वरण।

आदमी की छाँह
अब आदमी पर तन गई
इस तरह से
आदमी पर आदमी की बन गई

१९९२

मेरे देश का मन

मेरे देश का मन
क्षत-विक्षत है
आत्मा मर्माहत
देह खून से लथ-पथ।
बन्दूक के कुन्दे
भारी बूट
मोटी अक्ल की तरह
नाल और कीलें
कीलों से भरे चेहरे।
कितने कुन्द-जहन घाव
घाव में बारूद
नफरत के अलाव।
दया और रहम की ऊर्जा
सुना गई है
जीने को मौत की सजा।
उस भोली व
निर्दोष हँसी को
जो चाहती थी
फूल की तरह हँसे
हवा में
आकाश में
सुगंध व रोशनी की
तरह फैले व बसे।
अलमस्ती में इठलाए

आल्हा और ऊदल
ढोला और मारू गाये।

मौत फैल रही है
काले धन की तरह
बिसुरते मन की तरह
दर-दर अकाल के उनमान
जर्जरित भाल के समान।
दहशत भरी अफवाह की नाई
न बची बहिना, न बचा भाई।

एक पल गोली
दूसरे पल कर्फ्यू
सन्नाटे का अट्टहास
हर देहरी पर होली
एक पल मशीनगन का
दुगन में फिर तिगन में
आलाप
ठौर-ठौर उत्पात और प्रलाप।

मंदिर के ध्वज का
सिर ऊँचा
आरती की ऊँची उठी लौ
लौ को अरदास की लपट
बाहर घंटियों की तूफानी हवा से
चढ़ी परवान
'आयत' कयामत का कलमा
हर जन्मा, जन्म ले कर भी
अजन्मा।
आँख है
पर हर कोई अन्धा

मौत जिन्दगी को
दे रही कंधा।
कान है
पर हर कोई बहरा
न सूरत, न कोई चेहरा।

धर्म का नाम
या नाम का धर्म
न कोई काम, न कोई कर्म।
नहीं, हर जीना
एक-सा नहीं होता
एक जीना वह है
जिस में
होश देर से सही
आ तो जाता है
पर यह जीना
वह जीना है
जिसे जीने के बाद
इसी में मरना
व इसी में जीना
कभी प्रार्थना
कभी अर्चना
कभी मंत्र
कभी अरदास।

सचमुच
ये जहरीले नाखून हैं
नोचते हैं तुम्हें
और उन्हें भी
जिनके ये नाखून हैं!

○○○ १९९०

मेरा शहर : १

पहाड़ की गोदी में
जन्मा है मेरा शहर
पहाड़ अपने को काट कर
बनाता है नये-नये घर
और इन्हीं घरों में पलता है
प्यार-दुलार
ईर्ष्या, स्पर्धा
मालिन्य और खार।

१९८०

मेरा शहर : २

मेरा शहर अजीब हो भले
तनिक भी अजनबी नहीं।
तंग दिलों की मानिन्द गलियाँ
आँखों में चुभते-से गलियारे
रिसते घावों की तरह
खड्डों से भरी सड़कें
सड़ते जीवन के उनमान
कूड़े-करकट के ढेर
सब कहीं, हर दिशा में।

पके फफोलों की तरह
झुग्गी झोंपड़ियाँ
सुलगती गरमी का
हर कहीं सन्नाटा
गप्पों व हथाइयों का
टेम्पो के उठते धुएँ-सा शोर।

उगते सूरज का हर कहीं स्वागत
बुझते प्रकाश के प्रति ठंडी उपेक्षा
निस्पृह भाव से
घटना को समाचार की स्वीकृति
विज्ञान की अभिज्ञता के साथ
भाल पर रोली के टीके
पंच-नमाजी का अमिट निशान।

किसी की मौत पर
खूब फुर्सत से श्मशान-यात्रा
रामनाम का उच्चारण
सुलगती चिता की साक्षी में
शादी से लेकर
जन्म तक के चुटकले।

मेरे शहर का
आज भी वही कदीमी ढर्रा है
जो बरसों पहले था।
नये की आहट पहले भी सुन पड़ती थी
पर धीमी-धीमी
गये की मौत का मातम
आज भी वैसा ही है।

आकाश तक की खिड़कियाँ
बंद कर सकता है मेरा शहर
नई बयार से बचने के लिए।
इसके बावजूद
आ धमकता है
नये का हहराता सैलाब
चौंक कर उसे भी
बर्दाश्त कर लेता है
अनायास अचीते अतिथि के उनमान।

हर सामूहिक उपलब्धि को
हर कोई अपनी
रखैल मान लेता है
फिर करता है अन्वीक्षा
चीर-फाड़, काट-छाँट।

बर्फ के नीचे
सुलगाई जाती है आँच
वह आपके बारे में
आप से भी अधिक जानता है
जिस रूप में
आपको समझना चाहता है
समझ कर आँक लेता है।

वह मुझ से अधिक मेरा है
और आप से अधिक आपका
उसका अपनों से कम
गैरों से अधिक साबका
वह अपनी सलीब
दूसरों की देह पर टाँक देता है।

सच में मेरा शहर अजीब हो भले
पर अजनबी नहीं है !

[illegible] १९८०

रोटी और आदमी

रोटी और आदमी
सानुपातिक हैं क्या ?
सच तो यह है
कि आदमी का हर अंग
बन गया है पेट
वह आँख से झाँकता है तो रोटी
कान से सुनता है तो रोटी
नाक से सूंघता है तो रोटी
जहन में दहकता है तो रोटी।

रोटी छीन लेने वाले ने
कुछ ऐसी साजिश की है
आदमी की सुबुद्धि ले कर
उसे भूख ही भूख
इनायत की है।

[illegible] १९८५

कोलतार पोंछती राधा

राधा का चीर
मुँह की बजाय
पोंछता है
कोलतार की काली सड़क
राधा की अँगिया
छुपाती है भूख।
राधा का लहँगा
राधा से भी रोज-रोज
होता जा रहा महँगा।
क्या राधा
यूँ ही लुटेगी, लुटती रहेगी
हर दम
और देखते रहेंगे
यह सब
आप और हम ?

१९८६

निर्णय की घडी

इस उम्मीद में
कि शायद मौसम के बदलने से
धीमा हो इस का वेग
और शायद इस की दिशा बदले
हम बहुत चले
बहाव के साथ।
कभी मजबूती से ह[illegible]
खड़े किये हाथ।
बहाव रुका भी
पर थोड़ा-सा मुड़ कर
निकल गया आगे
हम उसे रोकने फिर भागे।
चलने रुकने का यह क्रम
मौसम के बदलने की उम्मीद
दिशा के बदलने का भ्रम
हमें छलता रहा
रुकने और भागने का सिलसिला
इसी तरह चलता रहा।
बहाव न केवल उजाड रहा है बस्तियाँ
छोटी-बड़ी समस्त हस्तियाँ
स्वयं किनारों को काट रहा है
उन्हें अपने वेग से बाँट रहा है।
हम जो हाथ जोड़ कर
दिशा बदलने को व्यग्र हैं
यह विध्वंस आंशिक नहीं समग्र है।

वक्त आ गया है
इस बहाव से हट कर
हमें अब सोचना पड़ेगा।
इस वक्त
यदि हम नहीं
तो कौन इस विनाश से लड़ेगा ?
क्या हमारे बदले
कोई प्रेत या गंधर्व अड़ेगा ?

१९८६

कारवा

मशाल लेकर
हम बहुत लोग चले थे
मशाल बुझी
तो
हम खुद ही जले थे।

पर जलने की सीमा थी।

किसी को रुकना पड़ा
किसी को झुकना पड़ा
हवा में कई
अलक्ष्य हाथ बढ़े
गिरती मशालें उठाईं
बुझती मशालें जलाईं
कारवाँ चलता रहेगा
हिमालय का बर्फ
हमेशा गलता रहेगा।
यह वो अँधेरा नहीं
जो बुझ जाए
रोशनी का दरिया है
लगातार बहेगा।

१९९०

सैंध

सैंध लग रही है
हर तरफ
माँ की कोख पर
लोरी पर
बच्चे के खेल पर
बाप बेटे के मेल पर
लड़कपन पर
अल्हडपन पर
यौवन के उल्लास पर
जीने के विश्वास पर
बुढ़ापे की आस पर
जीने के ढंग पर
अंग-प्रत्यंग पर
टुक धरती आकाश पर
पेड़ पर, साख पर
फूल-पत्ती, पाँख पर
गोया सब-कुछ पर
केवल इसलिए
कि भरा जा सके घर
अधिक से अधिक
भले ही मिटना पड़े
अब को
सब को

चौतरफा पड़ना पड़ेगा

हर एक मोर्चे पर
सूझ समझ से
और मजबूती से
लड़ना पड़ेगा।

○○○ १९९४

जिन्दगी : १

जिन्दगी जाने क्या से क्या हो गई है!
पलकें खुली हैं
पर वह सो गई है
जाने-अजाने
कहीं खो गई है।

जो इसे जीते हैं
और जिन के होने से वह है
उन्हें न केवल आँसुओं में
पूरा का पूरा लहू में
डूबो गई है।

जो हमारे होने से है
उसे हम से अलग
रहने कैसे दिया जाय?
जिन्दगी हम से है
और हम हैं जिन्दगी से
इसलिए जिन्दगी को
एक बार फिर मस्ती से
भरपूर जिया जाय
मानसरोवर का पानी
आकण्ठ पिया जाय।

१९८९

जिन्दगी : २

महज न मरना भर नहीं है
जिन्दगी
महज जी लेना भर नहीं है
जिन्दगी
ऊधो से लेकर माधो को देना भर
नहीं है जिन्दगी।

जाने कहाँ-कहाँ से आती है आँधियाँ
गहरा फैला हुआ आकाश है जिन्दगी
रात का घना अँधेरा भी है
और दिन का दहकता प्रकाश भी है जिन्दगी
दुख का टूटता पहाड़ भी है
मुस्कराते फूल की सुवास भी है जिन्दगी
अकेलेपन की घुटन है
तो उन्मुक्त महकता हुआ वातास भी है जिन्दगी

उलझी हुई पहेली है तो
पहेली की सुलझ का प्रयास भी है जिन्दगी
कभी-कभार अपने से निराश है
तो कभी जी सकने की आस भी है जिन्दगी
सीधी-सादी कहानी है
तो कभी तुम्हारा मेरा उलझा हुआ
इतिहास है जिन्दगी।

या तो पकती ही नहीं
और पकती है तो अध-जली

रोटी की बास है जिन्दगी
कड़कड़ाती भूख भी है
तो उसकी अस्मत को बचाने वाली
जद्दो-जहद खास भी है जिन्दगी।

○○○ १९८९

बयार

हिमालय से
और हिमालय से भी दूर
जाने कहाँ-कहाँ से
आस-पास से यहाँ-वहाँ से
आती है बयार
मुक्त और सुहानी
जैसे नानी की कहानी।

जाने कहाँ से चली थी
और कहाँ तक चलेगी
जिस में न जाने कितनी
झपकी थीं पलकें
सुलझी थीं अलकें
कितने बचपन मुस्कराए थे
और जिन्दगी में कैसे-कैसे
सपनों के अक्स उतर आये थे

उस पवित्र बयार में
कौन है जो नफरत बो रहा है
बयार को लहू से धो रहा है
बयार का प्रेम सच्चा है
उसी की जीत होगी
और नफरत की हार
जैसे परी कथाओं का दानव
हमेशा खाता है मार

और जीतता है
प्रेम का राजकुमार।

◇◇◇ १९९०

दीप

बस और नहीं
रक्त के दीप जलें कहीं !
जलें दीप ज्ञान के
मानवीय परित्राण के।

◇◇◇ १९९१

पहिचान : २

तस्वीर के
जरिये
पहिचान
असल की करना।
एक अच्छे खासे
इंसान में
बदरंग भरना।

असल इंसान से अब
मुखातिब होना ही पड़ेगा।
वरना
हैवान या शैतान से
कोई कैसे लड़ेगा ?

१९९०

प्राचीर से

दो सीमाएँ
पास-पास खड़ी हैं
अपनी-अपनी पीठ फेरे
अविचल अड़ी हैं।

न होती हैं सन्मुख
न एक दूसरे से बोलती हैं
अपने मन की बात
भूल से भी नहीं खोलती हैं।

दोनों ने भोगे हैं
साथ-साथ
इतिहास के अनेकानेक क्षण
कभी गीत से
कभी आग से
नहाया है इनका तृण तृण।
कभी फूल से
कभी बारूद से
भरें है इनके कण-कण।

कभी हवा की तरह
कभी आकाश की तरह
एक थीं
आज अजनबी हैं
जानकर अनपहचानी हैं।

दोनों का आँगन हरा था
'शिलर' ने 'बीथोविन' ने
'लिट्ज' ने 'वेगनर' ने 'गेटे' ने
और न जाने किस-किस ने।
उनके आकाश को
आस-पास को
अँधेरे की आस को
प्रकाश से भरा था
'ओरगन' के मेघनादी स्वर से
व वायलिन की मीड से
चराचर को
किया
हरा-ही-हरा सोने-सा खरा।

और फिर अचानक
रोशनी का वेश धर
अपने रंन्ध्र-रंध्र में
अँधेरा ही अँधेरा भर
आत्मरत
अहंकार का अजगर
फैलाने लगा जहरीले पर
वह शेषनाग सहित
समूची धरती को निगलेगा
और उसकी निर्धूम मणि को
कस कर काबिज कर लेगा
और फिर
अनन्त काल तक
अकेला
धरती को भोगेगा।

अस्तित्व उसी का होगा
जिसका वह कहे
रहेगा वही
जिसे
वह चाहता है कि रहे।

चुपचाप देखती रहीं
आज की सीमाएँ
कल की धरती
यह सब
कल क्या था
क्या हो गया अब ?

सीमा ने, धरती ने
वज्र वक्षी हो यह सब राहा
आकाश में
वातायन में
हवा में
बारूद की आग का दरिया
ज्वार की तरह बहा।

कागज-सा जला सब कुछ
मोम की तरह गला सब कुछ
यकायक
इतिहास रुक गया
उस मोड़ पर आकर
भविष्य झुक गया
और भवितव्य
दाने-दाने में लुक गया।

○○ पूर्व बर्लिन २ अक्टूबर १९८५

भस्मासुर ज्ञान

ज्ञान सिरज भी सकता है
कर सकता है नष्ट
दे सकता है आराम
फैला सकता है कष्ट
ज्ञान में विनाश भर।

कोई सोचता है
तरकश में तीर की तरह
वार कहीं और होगा
छार कहीं और होगा
छाँह कहीं और होगी
वह तो बजायेगा चैन की बंशी
उसका बढ़ेगा वंश।
दूसरों का, हाँ दूसरों का
होगा ध्वंस।
और उन्माद में
गर्व के प्रमाद में
अपने सर पर उठा अपना कृत्य
वह कर रहा है नृत्य।
उन्माद व गर्व का विस्फोट
विनाश गया बिरच
आत्मघाती भस्मासुर
ज्ञान के उन्माद से
हो गया किरच-किरच।

१९८५

उपभोक्ता संस्कृति

ऐश्वर्य का घोड़ा लेकर
कोई राजसूय यज्ञ को उन्मुख है
देश-विदेश के आभूषणों से विभूषित
इस की टापों के तले
धरती का कण जले तो जले
सहस्रवाहिनी सेनाएँ
करें धरती को पद दलित भले।

इस की वेगवान गति से
उड़ें धूल के बादल
सूरज की देह पड़े ठंडी
या फिर उसकी
प्रत्यंचा से निकले बाण
जल उठे तारे और चाँद।

सब कुछ हो स्खलित
उस के आगे नतशिर
वह हो विजयी
यह यज्ञ जिये
सब कुछ हो शून्य
केवल यह जी सके इसलिए।

ज्ञान जानकारी
इस यज्ञ की समिधा
इसकी व्यंजना
इसकी अभिधा

भरे पेट हों आधे
आधे भी हों ध्वस्त
पूर्णाहुति हो औरों की
और हों पस्त।
प्रज्वलित हो
दावानल की तरह
यज्ञ से क्षुधा ही क्षुधा।
और एश्वर्य की गंध
कुछ यों महके
हर कोई हो आत्मरत
बहके।
भूख रहे
पर सब भूख को भूलें
धरती भले सिसके
आकाश को छू लें
आप हम सम्प्रति
बन जाएँ भोग ही भोग
हमारी प्रतिभा
हमारी संस्कृति
अदृश्य ऐश्वर्य
घोड़े का सवार
नियंत्रित करेगा
हमारी नियति
हमारी आस्था
हमारी भक्ति
हमारी शक्ति
हमारी मुक्ति
हमारी दृष्टि
और हमारा परिप्रेक्ष्य।

विपन्न होंगे विपन्न
और विपन्न
और यों होगा
राजसूय यज्ञ सम्पन्न !

[illegible] १९८७

आजकल

ऐसा कुछ हुआ है आजकल
कि सच जीना नहीं
मौत से बचना भर रह गया है
दहशत है सब ओर
सुकून पूरी तरह ढह गया है
खून धमनियों में नहीं
गली-कूचों में
दरिया की तरह बह गया है।
विश्वास आदमी पर नहीं
अनायास पर है
सच मेहनत नहीं
सच केवल
लूट-खसोट भर है।
सच सोच नहीं
सच है एक अंधा उन्माद
सिमट गया है आदमी
भाल के तिलक
व काले निशान के
चक्रव्यूह में।
अब तो तलाशना पड़ेगा
आदमी को
क्योंकि सच तो है यह
कि आदमी की दुनिया में
आदमी ही खो गया है।

००० १९८०

बारूद के सौदागर

ये तारे नहीं
कसी हुई मुट्ठियाँ हैं
संकल्प की, आक्रोश की।
ये तारे नहीं
गगन भेदी नारे हैं
चुनौती है उनको
जो चुप-चुप
महलों का प्रलोभन देकर
नीवों में बारूद भर रहे हैं
विध्वंस का निर्माण
कर रहे हैं।
जो रुष्ट हैं इसलिए
कि दुनिया उनकी
जर-खरीद गुलाम होने से
नकारती है
इंकारती है
उनके अदृश्य कसे जाने वाले
शिकंजों के विरुद्ध
फुफकारती है।

ये मुक्ति को
शिखंडी-सा कर आगे
मुक्ति को बनाना चाहते हैं
जर-खरीद वेश्या।

तारों की ऊँचाइयाँ
हमने
इसलिए हासिल की हैं
कि उन मुट्ठियों से
मुस्कानों की वर्षा
बरसाई जाय
काँटों की नहीं
गुलाब की फसल सरसाई जाय।

ये तारे नहीं
कसी हुई मुट्ठियाँ हैं
संकल्प की, आक्रोश की
ये तारे नहीं नारे हैं
चुनौती के!

१९९२

अप्रत्यक्ष

भरोसे
सब उठ गए हैं
औरों के
और अपने आपके भी
क्योंकि हम सब लुट गए हैं।
दूसरे तो दूसरे हैं ही
हम भी हम कहाँ हैं ?
क्योंकि हमारा अपना कुछ भी नहीं है शेष
सर्वथा निःशेष।
सब कुछ बना है
बाहर।
सब कुछ तना है
बाहर।
कोई वायवीय
तय करता है
हम सबकी तरफ से
हम सबके लिए।
अब कुछ नहीं होता हमारे किए।
अपने आपको बनाये रखने के
लिए
गढ़ने पड़ेंगे
मजबूत इरादे
दृढ़ भरोसे।
तभी हो सकेंगे
जैसे-तैसे
हम अपने जैसे।

८ ८ ८ १९९३

आयातित

अलगनी पर सजा देने से
सुखा तो सकती है
बदलना तो दूर
पैबन्द तक
नहीं लगा सकती है धूप।

○○○ १९९३

मरीचिका

जाड़े में
जमी पानी की परत
सूरज व चाँद
से होती है स्वर्णिम
बर्फ पर
पसरा यह स्वर्णिंग चीर
हरण तो होगा
औरों का दिया
किसने कितना भोगा ?
फिर हो जाएँगे निर्वसन हम
जैसे थे वैसे
या शायद उस से भी बदतर!
सब कहीं तिरोहित होगा
पराई सम्पदा का क्रम
सुनहरा भ्रम।

१९९४

अमेरिका

~

अमेरिका ?
जहाँ स्पार्टेकस का हॉवर्ड फास्ट व
मार्टिन लूथर किंग रहते हैं
और रहता है मेरा कांति रूप राय उर्फ पट्टू
और यदि वह न भी रहता
फिर भी उसे जानना पड़ता
क्योंकि
कुछ ऐसा ही हुआ है
कि उसने अपनी जहरीला जिह्वा से
विश्व के हरफूल को छुआ है।

वह सब जगह है :
दर-दर में
घर-घर में।
वहीं से होता है शुरू
सब कुछ
और वही होता है
जो भी होता है
अब कुछ।

बन्दूक वहीं से चल कर
पहुँच जाती है किसी के साथ
हर किसी के हाथ।
शमशीर तो शमशीर
वहीं से चलती है तसवीर

बोलती गाती
सभी पर छाती।
वहीं से चलती है आज्ञा
झुका कर सर
वहीं से कटते हैं
हर किसी पंछी के पर।
वहीं पर खुलता है
तीसरा नेत्र
वहीं पर बनते बिगड़ते हैं
देशों के क्षेत्र।
इसका
उसका
तिसका
कहीं कुछ भी हो
सब हो जाता है उसका।
वह निर्बंध है
पूर्णतया स्वच्छंद है
जो फैलती है सर्वत्र
वह उसी की गंध है।
उसे न तो जकड़ती है
परम्परा
न संस्कृति न वसुंधरा
न इतिहास
फिर भी सब कुछ है उस के पास।
उस की अपनी कोई जड़ नहीं है
पर उस की जड़ें सब कहीं हैं।
जमीन पर
आकाश पर।
बड़ी अजीब फितरत है इस की
जहाँ कहीं भी युद्ध होता है

वह तत्काल पहुँच जाता है
औरों से सब कुछ लेकर
औरों की धरती पर लड़ता है
विजय पाता है।
ज्ञान की फसल
तैयार तो होती है
यहाँ-वहाँ
न जाने कहाँ-कहाँ
पर हो जाती है उसकी
हाँ, उस की भूख बेमिसाल है
तभी तो सब कहीं अकाल है।
वह जैसा चाहे समा जाता है
जिस को चाहे बँधा आता है।
सच वही जिसे वह जाने
मुक्ति वही, जिसे वह माने
यह उस की अडिग मनमानी है
आखिर होगा वही जो उसने ठानी है।

१९९४

भृकुटी

विनाश के यज्ञ की समिधा
दावानली उत्स
फिर सीमा-रेखा पर
एक भृकुटी तनी
पूर्व के क्षितिज में
इन्द्र धनुष पर
प्रत्यंचा खिंची।

'कालिया'
जो हो गया था अजगर
उस पर कोई चढ़ा
मोहभंग का
एक मंत्र पढा।
एक अपराजेय साहस
सँभल कर उठ गया
आकाश में
प्रकाश का तूफान
अनायास जुट गया।
चुटकी भर धूल की तरह
सूखे बबूल की तरह
जहाँ-तहाँ उड़ा
तिरोहित हुए क्षार-क्षार
अजगरी अंधकार।

भंग हुआ विनाश का यज्ञ

पराजित हुआ
आत्मरति का अंग
उधर सीमा के पूर्व
जहाँ पहले भी उगा था
उगा सूरज
एक बार फिर
फिर उठा वर्तमान
राख के ढेर से
'फॉइनिक्स' की तरह
भवितव्य का
फिर उठा
गर्वोन्नत सिर।
'वीथोवन' के
'शिलर' के
'लिट्ज' के
'गेटे' के गीत
फिर उभरे
फिर उजले हुए
प्रेम के मुरझाए हुए चेहरे।
फिर मनुष्य के प्रयास ने
आकाश को छुआ
इसी सीमा के पूर्व में
जो पहले हुआ था
उस से कहीं अधिक
ऐसा कुछ हुआ।
एक बार फिर
अँधेरे का अजगर
जिसका फन ही कुचला था
तन नहीं
आकाश में तन रहा है

विनाश का एक
नया रूप
बन रहा है।
अंधकार
बेशर्म हो कर
आ गया है फिर
अपने असली रूप में।
बारूद की गंध
फूल-फूल में
बिंध रही है
विनाश की प्रत्यंचा
एक बार फिर खिंच रही है।
इस बार एक नहीं
हजार-हजार हिटलर
उठ गये हैं तन कर
इधर-उधर जाने क्या-क्या रूप धर कर।
इसलिए एक बार फिर
सूरज को उगना होगा
इस बार सब तरफ
हर दिशा में
पूरब में भी
एक बार फिर
उठाना होगा गाण्डीव
हर हाथ में।

इस बार अजगरी अँधेरा
अपना जहर फैलाये
उस के पहले ही
उसे रोकना होगा
एक साथ मिल कर

समय नहीं अब
कि प्रतीक्षा करें
कि कोई गीता पढ़े
और कोई सुदर्शन चक्र लेकर
आगे बढ़े।
इस बार
अंधकार
ब्रह्मास्त्र पा गया है
उस के पास एक
अमोघ अस्त्र आ गया है
भस्मासुर की तरह
अपनी शक्ति के मद में
वह ताण्डव नृत्य करेगा
ऐसा हुआ तो वह
अकेला नहीं
समूचा जीवन नष्ट होगा
सब कुछ ध्वस्त होगा।
धरती या आकाश में
जो कुछ भी है
वह पता लगने के
पहले मरेगा।

अंधकार को
इसलिए
यहीं जीतना होगा
इस के पहले कि
वह शस्त्र उठा कर
धरती पर कहर ढाये
चलें
किरण खुद न आती हो

तो उसे हम ले आएँ।
किरण हो हाथ में
सब चलें साथ में।
सचाई तो प्रकाश ही है
प्रकाश 'न' होने की
स्थिति है
विकट नियति है।

अंधकार में
घटता है वह सब
जो खुली आँख में नहीं
विस्मृति में दबा पड़ा है
इसलिए
चलो
हम सब
सत्य की
ओर चलें
जरूरी हो तो जलें।

हमारी इस धरती के लिए
कुछ ऐसा करें
उसकी दिशा-दिशा को
गुलाब के फूलों से भरें।

[illegible] पुवे वोलेन ४-५ अक्टूबर १९८५

मनमानी

कोई हवा को
ईंधन की तरह जुटा कर
लगा दे आग
और आकाश-गंगा की ऊँचाई से
छितरा दे सर्वत्र
अंगार ही अंगार!

कोई उर्वरा धरती को
सिगड़ी बना दे
कोई समंदर के
खौलते पानी से
समूची सृष्टि को नहा दे!

क्योंकि
उसे मुगालता है
कि हवा, आकाश
धरती और पानी
माँ, दादी और नानी
सब उसी के हैं
और वह किसी का नहीं
क्या उसी की चलेगी मनमानी?

ओह! अजन्मे बच्चों
जरा सोचो
यदि ऐसा हुआ तो

न तुम्हारे राजा बचेंगे
न राजकुंवर
और न बचेगी रानी
फिर कैसे चलेगी कहानी ?

○○○ १९८५

रिमोट कंट्रोल

हमारी अपनी तो बिसात ही क्या है
परिवेश तो परिवेश
परे के पूरे देश
बदलन लगे हैं
रिमोट कन्ट्रोल से।

और तिस पर
मजा यह है
कि हमें लगता है
यह सब हग ही कर रह हैं।
यह उन्हीं का लिया हुआ
घारा है
जो हम चर रहे हैं।

जब कि राच यह है
कि यह हग ही हैं
जो शनैः शनैः
जीने की बजाय
गर रहे हैं।
जो रवयं को
थोथे अहम् रा भर रहे हैं।

[illegible] १९९३

रामनामी

आज से पचास साल
यानी आधी शताब्दी के पूर्व
तीन शताब्दी तक
छाई थी इस देश
पर एक गोरी छाया
जिसने रूम से लेकर
हमारे घर
फैला रखी थी एक माया।
उस वक्त
कुछ लोग थे
सर पर कफन बाँधे
गाण्डीव उठाये
लड़ रहे थे
एक आजाद देश
घड़ रहे थे।
और कुछ थे वे
जो रामनाम में रमे थे
बंद किये नयन
धर्म मुद्रा में जमे थे
और कुछ और थे
जो चलाकर
लाठी-लेजिम
अखाड़े
रटाते थे
सम्प्रदाय के पहाडे।

गोरी छाया
से डरते थे
संस्कृति की डींग
भरते थे।
राजनीति से
यानी आजादी से
तटस्थ थे
वे तो 'संस्कृति' में स्वास्थ्य में
मस्त थे
शीष पर
शिर्षानत थे
एक गद्दी ढूँढ ली थी
उस पर उन के आसन थे
तब न तो धर्म खतरे में था
न अस्मिता।
साम्राज्य में
सुख से सधा
एक राज्य था।
आधी शताब्दी के पहले
चौथाई शताब्दी तक
यही था सब कुछ।
और अब आधी शताब्दी में
बदल गये हैं तेवर
आतुर हैं
देश की मुक्ति के लिए
क्योंकि देश की मुक्ति
होती है
सत्ता की सुक्ति।

○○○ १९९३

बात अयोध्या की

उस अयोध्या की बात मत करो
जिसकी तुम याद दिलाते हो
क्योंकि उस अयोध्या का अर्थ होता है
प्राण देकर भी वचन निभाना।

उस अयोध्या की बात मत करो
जिसकी तुम याद दिलाते हो
क्योंकि उस अयोध्या का अर्थ होता है
किसी एक अकेले नागरिक के आक्षेप पर
राजा रानी की अग्नि-परीक्षा।

उस अयोध्या की बात मत करो
जिसकी बात तुम याद दिलाते हो
क्योंकि उस अयोध्या का अर्थ होता है
जूठे बेर खाना
आग से नहाना।

उस अयोध्या की बात मत करो
जिसकी बात तुम याद दिलाते हो
क्योंकि वैसा कुछ भी नहीं हुआ
सब कुछ झूठ कहा तुमने
और सब कुछ झूठ सुना हमने
अयोध्या तो सिर्फ एक अंध कुआँ।
वैसे अब तो अयोध्या आ भी नहीं सकती
न तो हो सकती हैं अब तीन रानियाँ

और न निभेगा वचन
जो विस्मृत क्षण में उगल दिया
न त्यागेगा कोई सिंहासन
त्रियाहठ का नागपाश
न कोई राम जाएगा वन
न कोई रहेगा चित्रकूट में।
अब शम्बूक मरेगा भी नहीं
ज्ञान प्राप्ति के अभिशाप की खातिर
हर कोई एक दूजे से शातिर।

न देगी कोई सती अग्नि-परीक्षा।
न लेगी कोई सीता धरती में जीवित समाधि।
अब वो अयोध्या आ भी नहीं सकती।
न लो उस अयोध्या का नाम
जिसकी न कोई इति, जिसका न कोई आदि।

वैसे तुम्हे वह अयोध्या
चाहिए भी नहीं
क्यों राम-भरत के अलावा
किसी को नहीं मिल सकती सत्ता
सत्ता, जो तुम्हारा एकमात्र ध्येय
जो तुम्हारा सम्पूर्ण अभिप्रय
उस अयोध्या की बात मत करो
जिसकी तुम याद दिलाना चाहते हो।

[illegible] १९९३

एक और महाभारत

क्या
फिर शुरू हो गया है
एक और महाभारत
एक ही कुनबे के बीच ?
या यह वही है जो
चलता रहा है
सदा से
वेश बदलकर।

महाभारत
जो भूख व भूख के बीच
रूँख व रूँख के बीच।
एक रूँख लड़ रहा है
कि वह बढ़े और बढे
चढ़े और चढे।
दूसरा रूँख
जो लड़ रहा है इसलिए
कि वह
न कटे।
जो बढ़ती ही जाती है
सुरसा की तरह
बढ़ती ही जाती है
उसकी भूख सृष्टि-सी
सब कुछ

चढ़ती ही जाती है।
वह तब तक नहीं मिटेगी
जब तक
सृष्टि न होगी
उस की मुट्ठी में बंद।

दूसरी भूख
जो चाहती है बस इतना
जो हो पेट जितना।

युद्ध है
क्षुधा न मिटाने
और क्षुधा के न होने के बीच
स्वर्ग और रौरव
पाण्डव और कौरव के बीच।

क्या फिर शुरू हो गया है
एक और महाभारत...
एक ही कुनबे के बीच ?

१९९३

चुनौती

हर कोई क्रुध है
सब और युद्ध है।

उजाड़ होती धरती
सूना होता आकाश
धुंध के उड़ते गुबार में
विलुप्त होता प्रकाश।

पर यही सब सच नहीं है
अब भी आदमी में
बात बच रही है
रचने की
बड़े से बड़े हमले से बचने की।

आखिर आदमी ने ही बनाया था
सब कुछ
सब को तलाश के
अनगढ़ को तराश के
उसने स्वर उठाये थे
आस के।

यह सब हुआ था
उस के अजेय विश्वास से।
इसलिए आदमी जब तक है
सब जो अच्छा होता है
वह तब तक है।

इसलिए हरदम लड़ना पड़ेगा
जब तक सब कुछ न हो जाय
जीवन्त।
सुवासित सार्थक
दिग्-दिगन्त।

१९९३

यह बात हुई है कैसी ?

सब कुछ अटा पड़ा है, सब कुछ बँटा पड़ा है
यह बात हुई है कैसी, यह घात हुई है कैसी ?

सूरज दिन से ऊब गया है
उगते ही डूब गया है।
आया ही नहीं उजाला
यह प्रात हुई है कैसी ?

न जाने किधर को रूँख गये हैं
इधर तो सागर सूख गये हैं
बादल से आग गिरी है
यह बरसात हुई है कैसी ?

सारे गाँव हुए हैं सूने
ढाणी ठाँव हुए हैं ऊने
कंकर-भाखर टूट रहे हैं
सब के साथ यह हुई कैसी ?

ऐसी बात विचित्र हुई है
कल का कोई चित्र नहीं है।
इंसान जिसे कहते हैं
वह जात हुई है कैसी ?

अब ना चाँद, नहीं सितारे
टूटे सारे के सारे

अब दिशा नहीं दिखती है
यह रात हुई है कैसी ?

जब हाथों से हाथ जुड़ेंगे
सारे पंथ पुनः मुड़ेंगे
अपने चिंतन की गरिमा
ज्ञात हुई है ऐसी।

सूरज हम को ढूँढ़ रहा है
यह शब्दों ने हमें कहा है
शब्दों की गहरी बातें
प्रख्यात हुई हैं ऐसी।

◇◇◇ १९९४

मुक्ति का एक और नाम : मंडेला

मुक्ति को मिल गया
एक नया नाम
अदम्य साहस को
एक नया धाम।
स्थापित गरिमा मनुष्य की
मनुष्य भर होने से
एक नया प्रकाश विकीर्ण हुआ
एक अँधेरे कोने से।
सद्य स्नात
धरती का गात
प्रकाश से भर गया
अँधेरा स्तब्ध हुआ
डर गया।
एक अजेय विश्वास
यह सब कर गया।

अवतार नहीं
मनुष्य भर
धरती से उठा
न तो राजमुकुट
न रथ
अपने से ही शुरू हुआ
एक नया अथ।

कलयुगी कंस से लड़ा

हो गया धरती से, आकाश से बड़ा
बेबस मजलूम
हो गया खड़ा
वर्तमान को
भविष्य को
एक नये सिरे से घड़ा।
अपनी राधा को भी माफ नहीं किया
इसलिऐ नहीं की किसी ने
ऊँगली उठा दी
उस के सतीत्व पर
पर इसलिए
कि किसी धरती पुत्र को
उसने सताया
और अपने आपको
माफ नहीं किया।
अपनी जनता से
बड़ी नहीं राधा
चाहे प्रेम हो
कितना ही अगाधा।
जुल्म पर
मनुष्य के
विजय की
पताका फहर गई
एक मुट्ठी तनी
हवा में लहर गई
एक शलाका उठी
जुल्म पर कहर गई
उस के होने से
जुल्म की
अन्याय की

आँधी
जहाँ थी
वहीं की वहीं ठहर गई।

◇◇◇ १९९४

मानव श्रृंखला

न तो राम ने
न रहीम ने
एक आदमी रामदीन ने
यह फाटक बनाई है।
और अब्दुल करीम ने
बनाये है जंगले
जिन में सुरक्षित रहते है
मेरे अमले
मेरे बँगले।
सच में मुझे घेरे हुए है
रामदीन व अब्दुल करीग के
लोहे-हथोड़े से घड़ी
आग में जली
इस्पाती बाँहें।
इन्हीं बाँहों में
बाँहों की मानव श्रृंखला में
रहता हूँ मैं
सुरक्षित
अपनी चाहों में।

००० १९९३

सच का डर

तसलीमा !
तुमने यह क्या किया ?
सच को सच
कह दिया ?

तुमने भी वही किया
जो किया 'सहमत' ने
और हमको डाल दिया
जहमत में।

तुम्हारा तो यह हाल है—
कि तुम कहीं भी हो रोम में
बर्लिन में, ढाका में, अयोध्या में
रिस्टॉग में, मन्दिर में या मस्जिद में
तुम्हारे लिए सच बोलना
महज किताबी खयाल है।
तुम्हारे लिये तो
सच मुहाल है।
सच तुम से कहा नहीं जाता
और कहना तो दूर
सहा भी नहीं जाता।

बिना कुछ भी किए
हो जाते हो स्थापित
जामा मस्जिद में
या परिषद में।

जब परदेसी था
तो उसके चाटते थे तलवे
या फिर मौन थे
तुम्हारे लिए परदेसी
कौन थे ?
वे थे वसुधैव कुटुम्बकम्
के अंग।
तुम तब भी
नयन मूँद
ध्याम मग्न थे
तुम थे तब
तपस्या युक्त
मोह माया मुक्त
परदेसी के हाथों
कटने वाले
तुम्हारे नजदीक अज्ञ थे।
वो गये
तो सहसा
भंग हुआ ध्यान
जाग उठा
जाने कहाँ से
स्वाभिमान ?

अब मिलने लगा मोह
और मिलने लगी माया
तब तुम्हें अस्मिता
का ध्यान आया।
तुम ही हो
बदलकर भेस

भाषा, परिवेश
सब कहीं देते हो नर बलि।
बन बैठे हो
मुल्ला और संत
बाहुबली।
बिना कुछ किये
तुमने उलट दिये
ज्ञान के दिए।

तुम्हीं थे
स्वस्तिक उठाकर
बर्लिन से चले
और उसी स्वस्तिक को
पलट कर
उठाये हो त्रिशुल
कभी संत उवाच्
कभी फतवे
कभी जय सियाराम
कभी ला इल्लालाहु मुहम्मादुन
सुल्लुलाह।

तुम्हारा तो यह उसूल
कि तुम्हें जो जँचे
वही हर कोई रचे।
असल नित्शे व

तुम में अवतरित हुए
तुम में रहें
तुम में ही जिएँ।
मौत के सौदागर

मौत की बात करते हैं
विचार से डरते हैं।
सोचते हैं खिड़कियाँ बन्द करने से
रुक जायेगी
सुबह वहीं जाएगी ठहर
उन्हें सतात. है
सतत
नये का डर।

नहीं, तसलीमा न तो अकेली है
न एक देह भर।
वह तो एक उत्स है
विचार का
एक सोच है—
यानी वह
जिस से होता है
आदमी आदमी।
जब तक आदमी है
तब तक तसलीमा रहेगी
इंसान के भेसधारी
भेड़ियों के तिलस्म को
तोड़ेगी
जो सच है
उसी को कहेगी।

००० १९९४